श्री महावीराय नमः

जय गुरु हीरा

श्री कुशलरत्नगजेन्द्रगणिभ्यो नमः

जय गुरु मान

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए

(ज्ञान समस्त द्रव्यों का प्रकाशक है)

जैन धर्म भूषण

आठवीं कक्षा

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड

प्रधान कार्यालय :

घोड़ों का चौक, जोधपुर -342 001 (राजस्थान)

फोन : 0291-2630490 फैक्स : 0291-2630490, 2636763

सूत्र विभाग-

दशवैकालिक सूत्र
चतुर्थ अध्ययन
छज्जीवणिया (षड्जीवनिका)

मूल– सुयं मे आउसं! तेणं भगवया एवमक्खायं।
इह खलु छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया
महावीरेणं कासवेणं पवेइया, सुअक्खाया, सुपण्णत्ता,
सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती।।1।।

अन्वयार्थ– आउसं– हे आयुष्मन् शिष्य! **मे–** मैंने। **तेणं–** उन। **भगवया–** भगवान द्वारा। **अक्खायं–** कहा गया। **एवं–** इस प्रकार। **सुयं–** सुना है। **इह–** इस जिन शासन में। **खलु–** निश्चय ही। **छज्जीवणिया–** षड्जीवनिकाय। **नामज्झयणं–** नाम का अध्ययन। **समणेणं–** श्रमण। **भगवया–** ज्ञानी। **कासवेणं–** काश्यप गोत्री। **महावीरेणं–** महावीर द्वारा। **पवेइया–** जाना गया है। **सुअक्खाया–** अच्छी तरह कहा गया है। **सुपण्णत्ता–** अच्छी तरह समझाया गया है। **मे–** मेरे लिए। **धम्मपण्णत्ती–** वह धर्म प्रज्ञप्ति। **अज्झयणं–** अध्ययन। **अहिज्जिउं–** पढ़ना। **सेयं–** श्रेयष्कर है।

भावार्थ– सुधर्मा स्वामी ने अपने शिष्य जम्बू को सम्बोधन करते हुए कहा कि हे आयुष्मन्। मैंने सुना है कि जिन शासन में षड्जीवनिकाय नाम का अध्ययन, काश्यप गोत्री भगवान महावीर ने अच्छी तरह जाना, कथन किया और समझाया है। उस धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन को पढ़ना मेरे लिए श्रेयष्कर है।

यहाँ पर षड्जीवनिकाय और धर्म प्रज्ञप्ति, इस प्रकार इस अध्ययन के दो नाम बताये गये हैं।

मूल– कयरा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं,
समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया।
सुअक्खाया, सुपण्णत्ता सेयं मे अहिज्जिउं,
अज्झयणं धम्मपण्णत्ती।।2।।

अन्वयार्थ– सा– वह। **छज्जीवणिया–** षड्जीवनिकाय। **नामज्झयणं–** नाम का अध्ययन। **कयरा–** कौनसा है, जो। **खलु–** निश्चय ही। **समणेणं–** श्रमण। **भगवया–** भगवान। **महावीरेणं कासवेणं–** काश्यप गोत्री महावीर द्वारा। **पवेइया–** अच्छी तरह जाना गया है। **सुअक्खाया–** अच्छी तरह कहा गया है। **सुपण्णत्ता–** और अच्छी तरह समझाया गया है। **धम्मपण्णत्ती अज्झयणं–** वह धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन। **अहिज्जिउं–** पढ़ना। **मे–** मेरे लिए। **सेयं–** श्रेयष्कर है।

भावार्थ– गुरु द्वारा धर्मप्रज्ञप्ति अध्ययन का परिचय सुनकर शिष्य, जिज्ञासा करता है कि गुरुदेव! वह धर्मप्रज्ञप्ति अध्ययन कौनसा है? जिसको श्रमण भगवान महावीर ने अच्छी तरह जाना, कथन किया और समझाया है। जिसका अध्ययन मेरे लिए हितकारी है।

षड्जीवनिकायः नाम, स्वरूप और प्रकार-

मूल- इमा खलु सा छज्जीवणिया नामज्झयणं समणेणं भगवया महावीरेणं कासवेणं पवेइया-सुअक्खाया, सुपण्णत्ता,
सेयं मे अहिज्जिउं अज्झयणं धम्मपण्णत्ती। तं जहा-पुढवीकाइया,
आउकाइया, तेऊकाइया, वाउकाइया, वणस्सइकाइया, तसकाइया ।।3।।

अन्वयार्थ- इमा खलु सा- इसका अर्थ पूर्ववत्। **तं जहा-** वह धर्म-प्रज्ञप्ति अध्ययन इस प्रकार है। **पुढवीकाइया-** पृथ्वीकायिक जीव। **आउकाइया-** अप्कायिक (पानी) जीव। **तेऊकाइया-** अग्निकायिक जीव। **वाउकाइया-** वायुकायिक जीव। **वणस्सइकाइया-** वनस्पतिकायिक जीव। **तसकाइया-** गतिशील त्रसकायिक जीव।

भावार्थ- संयमी जीवन का लक्ष्य, जीव मात्र की रक्षा करना है। संक्षेप में संसार के सारे जीव 6 विभागों में विभक्त किये जा सकते हैं। जैसे- पृथ्वीकायिक, अप्कायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक। ऐसा कोई जीव नहीं जो इन विभागों में न आता हो।

मूल- पुढवी चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा
पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।।4।।

अन्वयार्थ- पुढवी- पृथ्वी। **चित्तमंतमक्खाया-** चेतनावाली कही गई है, उसमें। **पुढोसत्ता-** पृथक् सत्ता वाले। **अणेगजीवा-** अनेक जीव हैं। **सत्थपरिणएणं-** अग्नि आदि शस्त्र से परिणत के। **अन्नत्थ-** अतिरिक्त पृथ्वी सजीव होती है।

भावार्थ- प्रभु महावीर पृथ्वी आदि को सचेतन बतलाते हुए कहते हैं कि- पृथ्वी चेतनावाली अर्थात् सचेतन है। कंकर, पत्थर, शिला, लवण, खडी, खनिज पदार्थ आदि में तथा छोटे से छोटे कण में भी अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर वाले पृथ्वीकाय के असंख्यात जीव हैं।

मूल- आऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा
पुढो सत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।।5।।

अन्वयार्थ- आऊ- जलकाय। **चित्तमंतमक्खाया-** चेतनावान् कहा गया है, जलकाय में। **पुढो सत्ता-** पृथक् सत्ता वाले। **अणेग जीवा-** अनेक जीव हैं। **सत्थपरिणएणं-** अग्नि आदि शस्त्र से परिणत के। **अन्नत्थ-** अतिरिक्त आऊ (जल) सजीव होता है।

भावार्थ- पृथ्वी के समान जलकाय भी चेतनावान् कहा गया है। एक-एक बूँद में अनेक जीव हैं। जल में जलकायिक जीव एक बूँद में असंख्य होते हैं और जल के आश्रित हजारों त्रस जीव यानी कीड़े आदि भी रहते हैं। जल चेतनावान् है, सजीव है। खारा पानी मीठे पानी का और मीठा पानी खारे पानी का शस्त्र है। कूप, तलाई, नदी, समुद्र और मेघ का पानी और जमा हुआ पानी का बर्फ भी अप्काय का अंग और जीव का पिंड है। अग्नि आदि शस्त्र से परिणत के अतिरिक्त शेष जल सजीव होता है।

मूल- तेऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा
पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।।6।।

अन्वयार्थ- तेऊ- अग्निकाय। **चित्तमंतमक्खाया-** चेतना वाली कही गई है, उसमें। **अणेगजीवा-** अनेक जीव। **पुढोसत्ता-** पृथक् सत्ता वाले हैं। **सत्थ परिणएणं-** शस्त्र परिणत के। **अन्नत्थ-** अतिरिक्त वे अग्निकाय भी सजीव हैं।

भावार्थ– तेजस्काय-अग्नि को चेतनायुक्त कहा गया है। उल्का, अंगार, ज्वाला और विद्युत् आदि सब प्रकार की अग्नि सजीव है। अंगार के सूक्ष्म कण में भी असंख्य जीव हैं। अंगुल के असंख्यातवें भाग प्रमाण शरीर वाले ये सब जीव अलग-अलग सत्ता वाले हैं। पानी, मिट्टी आदि विरोधी तत्त्वों से परिणत को छोड़कर शेष अग्नि भी चेतनावान् है।

मूल– वाऊ चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा।
पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं।।7।।

अन्वयार्थ– वाऊ- वायुकाय। **चित्त मंतमक्खाया-** चेतना वाली कही गई है। **अणेग जीवा-** अनेक जीव। **पुढोसत्ता-** पृथक्-पृथक् सत्ता वाले हैं। **सत्थ परिणएणं-** शस्त्र परिणत के। **अन्नत्थ-** अतिरिक्त वे सजीव हैं।

भावार्थ– वायुकायिक जीव चेतनावान् हैं। उत्कलवात, मंडलवात, तनवात, घनवात, झंझावात आदि वायुकायिक जीव हैं। मुख की जरासी फूँक से वायुकाय के असंख्य जीवों की विराधना हो जाती है अथवा जरा सी फूँक मात्र सचित्त वायु में असंख्य जीव होते हैं। आघात, टक्कर और अग्नि आदि वायुकाय के शस्त्र हैं। पंखे की हवा, इंजन की वाष्प और गैस आदि की वायु अचित्त संभव है, किन्तु वह भी सचित्त वायु के लिए घातक होने से सचित्त के त्यागियों के लिए त्याज्य है। आघात, टकराहट और अग्नि आदि शस्त्रों से वायु अचित्त होती है।

मूल– वणस्सई चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं। तं जहा - अग्गबीया - मूलबीया - पोरबीया - खंधबीया, बीयरूहा, संमुच्छिमा तणलया, वणस्सइकाइया सबीया, चित्तमंतमक्खाया अणेगजीवा पुढोसत्ता अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ।।8।।

अन्वयार्थ– वणस्सई- वनस्पतिकाय। **चित्तमंतमक्खाया-** चेतना वाली कही गई है। **सत्थपरिणएणं-** शस्त्र परिणत के। **अन्नत्थ-** अतिरिक्त वनस्पति में। **अणेगजीवा-** अनेक जीव। **पुढोसत्ता-** पृथक्-पृथक् सत्ता वाले कहे गये हैं। **तं जहा-** वनस्पतिकाय के भेद इस प्रकार हैं। **अग्गबीया - मूलबीया - पोरबीया - खंधबीया - बीयरूहा - संमुच्छिमा - तणलया-** 1. अग्रबीज, 2. मूलबीज, 3. पर्वबीज, 4. स्कंधबीज, 5. बीजरूह, 6. संमूर्च्छिम, 7. तृणलता। **वणस्सइकाइया-** वनस्पतिकायिक। **सबीया-** बीज सहित। **चित्तमंतमक्खाया-** चेतना वाली कही गई है। **सत्थपरिणएणं-** शस्त्र परिणत के। **अन्नत्थ-** अतिरिक्त वनस्पति में। **अणेग जीवा-** अनेक जीव। **पुढो सत्ता-** पृथक्-पृथक् सत्ता वाले कहे गये हैं।

भावार्थ– वनस्पति चेतना वाली है। वनस्पति में अनेक जीव पृथक्-पृथक् सत्ता वाले हैं। मुख्य रूप से सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक ऐसे वनस्पति के तीन प्रकार हैं। अग्रबीज, मूलबीज, पर्वबीज, स्कन्धबीज, बीजरूह, संमूर्च्छिम, तृण, लता ये भी वनस्पति के मुख्य प्रकार हैं।

अग्नि, नमक आदि शस्त्रों से अचित्त बनी हुई के अतिरिक्त शेष वनस्पति सचित्त मानी गई है।

मूल– से जे पुण इमे अणेगे बहवे तसा पाणा, तं जहा- 1. अंडया, 2. पोयया, 3. जराउया, 4. रसया, 5. संसेइमा, 6. संमुच्छिमा, 7. उब्भिया, 8. उववाइया, जेसिं केसिं च पाणाणं अभिक्कंतं, पडिक्कंतं, संकुचियं, पसारियं, रूयं, भंतं तसियं, पलाइयं, आगइगइविण्णाया, जे य कीडपयंगा, जा य कुंथु पिवीलिया, सव्वे बेइंदिया, सव्वे तेइंदिया, सव्वे चउरिंदिया, सव्वे पंचिंदिया, सव्वे तिरिक्ख जोणिया, सव्वे नेरइया, सव्वे मणुआ, सव्वे देवा, सव्वे पाणा परमाहम्मिया, एसो खलु छट्ठो जीवनिकाओ 'तसकाओ' त्ति पवुच्चइ।।9।।

अन्वयार्थ– पुण- फिर। **से जे इमे-** अब जो ये। **अणेगे बहवे तसा पाणा-** अनेक प्रकार के बहुत से त्रस जीव हैं। **तं जहा-** जो इस प्रकार हैं। **अंडया-** अंडज-अंडे से उत्पन्न होने वाले पक्षी आदि। **पोयया-** पोतज- हाथी,

चमगादड़ आदि पोत यानी कोथली में लिपटे हुए। **जराउया-** जरायुज- जरायु सहित पैदा होने वाले गाय, भैंस, मनुष्य आदि। **रसया-** रसज- रस में विकार होने से उत्पन्न होने वाले द्वीन्द्रियादिक जीव। **संसेइमा-** संस्वेदज- पसीने से उत्पन्न होने वाले जूँ-लीख आदि जीव। **संमुच्छिमा-** सम्मूर्च्छनज- बिना माता-पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाले संमूर्च्छिम कीड़े, पतंगे आदि। **उब्भिया-** उद्भिज- भूमि फोड़कर पैदा होने वाले जीव जैसे- टिड्डी आदि। **उववाइया-** औपपातिक - देव, नारकी जीव। **जेसिं-** जिन। **केसिं-** किन्हीं। **च-** और। **पाणाणं-** प्राणियों के। **अभिक्कंतं-** सामने आना। **पडिक्कंतं-** पीछे जाना। **संकुचियं-** संकोच करना। **पसारियं-** अंग फैलाना। **रूयं-** शब्द करना। **भंतं-** भ्रमण करना। **तसियं-** त्रस्त, भयभीत होना। **पलाइयं-** भागना। **आगइ-गइ-** आगति और गति के। **विन्नाया-** ज्ञाता होना। यह त्रस जीव की पहिचान है। **जे य-** जो ये। **कीडपयंगा-** कीट पतंगे हैं। **जा य-** और जो। **कुंथुपिवीलिया-** कुंथु तथा पिपीलिका- कीड़ी हैं। **सव्वे-** सब। **बेइंदिया-** दो इन्द्रियों वाले जीव। **सव्वे तेइंदिया-** सब तीन इन्द्रियों वाले जीव। **सव्वे चउरिंदिया-** सब चार इन्द्रियों वाले जीव। **सव्वे पंचिंदिया-** सब पाँच इन्दियों वाले जीव। **सव्वे तिरिक्ख जोणिया-** सब तिर्यंच योनि के जीव। **सव्वे नेरइया-** सब नरकयोनि के जीव। **सव्वे मणुआ-** सब मनुष्य। **सव्वे देवा-** सब देव। **सव्वे पाणा-** सब प्राणी। **परमाहम्मिया-** परम सुख के अभिलाषी हैं। **ऐसो-** यह। **खलु-** निश्चय। **छट्ठो जीवनिकाओ-** छठा जीवनिकाय। **तसकाओ-** त्रसकाय। **त्ति-** इस नाम से। **पवुच्चइ-** कहा जाता है।

भावार्थ- त्रस जीव अनेक प्रकार के कहे गये हैं जो मुख्य रूप से इस प्रकार हैं- 1. अण्डे से उत्पन्न होने वाले अण्डज, 2. थैली से उत्पन्न होने वाले पोतज, 3. जर से लिपटे हुए उत्पन्न होने वाले जरायुज, 4. रस में विकार होने से उत्पन्न होने वाले रसज, 5. स्वेद-पसीने से उत्पन्न होने वाले जूँ, लीख, खटमल आदि स्वेदज, 6. बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाले कीड़े, पतंगे आदि सम्मूर्च्छिम, 7. भूमि फोड़कर उत्पन्न होने वाले उद्भिज, 8. उपपात से उत्पन्न होने वाले औपपातिक। इस प्रकार आठ प्रकार के त्रस जीव हैं।

जिन प्राणियों में सामने आना, पीछे जाना, संकोच, प्रसारण, शब्द करना, भ्रमण करना, भयभीत होना, भागना और आगति-गति का ज्ञान होना, ये लक्षण होते हैं, वे त्रस जीव कहलाते हैं। कीड़े, पतंगे, कुंथु एवं पिपीलिका आदि सब दो इन्द्रिय से पाँच इन्द्रिय वाले जीव त्रस हैं। गति की अपेक्षा एकेन्द्रिय को छोड़कर, सब तिर्यंच योनि के जीव, सब नारकीय जीव, सब मनुष्य और सब देवता, ये सब त्रस प्राणी हलन चलन वाले हैं। सब त्रस प्राणी परम सुख के अभिलाषी हैं। (कोई जीव दुःख नहीं चाहता)। ये सब जीव त्रसकाय वाले कहे जाते हैं। ये सुख-दुःख को और हर्ष-खेद को व्यक्त करते हैं, अतः इनमें स्थूल चेतना है।

दण्ड समारम्भ के त्याग का उपदेश और शिष्य द्वारा स्वीकार-

मूल- इच्चेसिं छण्हं जीवनिकायाणं नेव सयं दंडं समारंभिज्जा, नेवन्नेहिं दंडं समारंभाविज्जा, दंडं समारंभंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अण्णं न समणुजाणामि।

तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।।10।।

अन्वयार्थ- इच्चेसिं- इन। **छण्हं जीवनिकायाणं-** छह जीव निकायों के लिए। **सयं-** स्वयं। **दंडं-** दण्ड का। **नेव समारंभिज्जा (समारंभेज्जा)-** समारम्भ करना नहीं। **अन्नेहिं-** दूसरों से। **दंडं-** दण्ड का। **नेव समारंभाविज्जा (समारंभावेज्जा)-** समारम्भ करवाना नहीं। **दंडं-** दण्ड का। **समारंभंते-** समारम्भ करने वाले। **अन्ने वि-** अन्य को भी। **न समणुजाणिज्जा (समणुजाणेज्जा)-** अच्छा मानना नहीं। **जावज्जीवाए-** जीवन भर के लिए। **तिविहं-** तीन करण। **तिविहेणं-** तीन योग से। **मणेणं-** मन से। **वायाए-** वचन से। **काएणं-** काया से। **न करेमि-** करूँ नहीं। **न**

कारवेमि- करवाऊँ नहीं। **करंतं पि-** करने वाले। **अन्नं-** अन्य का। **न समणुजाणामि-** अनुमोदन भी करूँ नहीं। **तस्स-** उस पूर्वकृत समारम्भ का। **भंते!-** हे पूज्य! **पडिक्कमामि-** मैं प्रतिक्रमण करता हूँ। **निंदामि-** निंदा करता हूँ। **गरिहामि-** गर्हा करता हूँ। **अप्पाणं-** उस पाप से अपनी आत्मा को। **वोसिरामि-** व्युत्सर्ग (अलग) करता हूँ।

भावार्थ- षट्कायिक जीवों का परिचय देकर अब गुरुदेव उनकी रक्षा का उपदेश देते हैं- जैन मुनि का यह संकल्प होता है कि पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के इन जीवों पर स्वयं दण्ड का समारम्भ करना नहीं। दूसरों से दण्ड समारम्भ कराना नहीं और हिंसादि दण्ड करने वालों का अनुमोदन करना नहीं। मन, वचन और काया से, तीन करण और तीन योग से, जीवन भर के लिए भूतकाल में जो दण्ड समारम्भ किया है, उसके लिए प्रतिक्रमण करना, निन्दा एवं गुरु साक्षी से गर्हा करते हुए पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग करना (पाप से पृथक् करता हूँ)।

शिष्य द्वारा रात्रिभोजन-त्याग सहित पंच महाव्रतों को स्वीकार-

मूल- पढमे भंते! महव्वए पाणाइवायाओ वेरमणं। सव्वं भंते! पाणाइवायं पच्चक्खामि, से सुहुमं वा, बायरं वा, तसं वा, थावरं वा, नेव सयं पाणे अइवाइज्जा, नेवन्नेहिं पाणे अइवायाविज्जा (अइवायावेज्जा) पाणे अइवायंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा (समणुजाणेज्जा), जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

पढमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं।।11।।

अन्वयार्थ- भंते- हे भगवन्! **पढमे-** प्रथम। **महव्वए-** महाव्रत में। **पाणाइवायाओ-** प्राणातिपात से। **वेरमणं-** निवृत्ति करता हूँ। **भंते!-** हे पूज्य! **सव्वं-** सर्वथा। **पाणाइवायं-** प्राणातिपात का। **पच्चक्खामि-** प्रत्याख्यान करता हूँ। **से सुहुमं-** वह सूक्ष्म। **वा-** या। **बायरं-** स्थूल। **तसं-** त्रस। **वा-** अथवा। **थावरं-** स्थावर जीव के। **पाणे-** प्राणों का। **सयं-** स्वयं। **नेव अइवाइज्जा-** अतिपात यानी हनन कभी करूँगा नहीं। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत्।

भावार्थ- जैन मुनि महाव्रती होने से पूर्ण अहिंसक होते हैं। वे सूक्ष्म या बादर, त्रस अथवा स्थावर, किसी भी जीव की स्वयं हिंसा करते नहीं, दूसरों से करवाते नहीं और हिंसा करने वाले को अच्छा भी नहीं मानते। प्रथम महाव्रत में सर्वथा हिंसा वर्जन की प्रतिज्ञा को दुहराते हुए शिष्य कहता है कि मैं जीवन भर के लिए तीन करण और तीन योग से अर्थात् हिंसा करूँगा नहीं, कराऊँगा नहीं, करने वाले का अनुमोदन करूँगा नहीं, मन, वचन और काया से। पूर्वकृत हिंसा के पाप को हल्का करने के लिए प्रतिक्रमण करता हूँ, पाप की निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से पाप की गर्हा करता हूँ और अपनी आत्मा को पाप से अलग करता हूँ। इस प्रकार व्रतों में दृढ़ता लाने हेतु शिष्य गुरु के समक्ष प्रतिज्ञा का पुनरावर्तन करता है।

मूल- अहावरे दुच्चे (दोच्चे) भंते! महव्वए मुसावायाओ वेरमणं सव्वं भंते! मुसावायं पच्चक्खामि। से कोहा वा, लोहा वा, भया वा, हासा वा, नेव सयं मुसं वइज्जा (वएज्जा), नेवन्नेहिं मुसं वायाविज्जा (वायावेज्जा) मुसं वयंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा (समणुजाणेज्जा), जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

दुच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं।।12।।

अन्वयार्थ– अहावरे– अब आगे। **भंते!–** हे भगवन्! **दुच्चे महव्वए–** दूसरे महाव्रत में। **मुसावायाओ–** मृषावाद से। **वेरमणं–** विरति होती है। **भंते!–** हे पूज्य! **सव्वं–** सब प्रकार के। **मुसावायं–** मृषावाद का। **पच्चक्खामि–** प्रत्याख्यान करता हूँ। **से–** वह मृषावाद। **कोहा वा–** क्रोध से। **लोहा वा–** लोभ से। **भया वा–** भय से, अथवा। **हासा वा–** हास्य के वश। **सयं–** स्वयं। **मुसं–** मृषावाद। **नेव वइज्जा–** बोलूँगा नहीं। **अन्नेहिं–** बोलने वाले - दूसरों को भी। **मुसं–** मृषावाद। **नेवन्नेहिं वायाविज्जा–** दूसरों को बोलाऊँगा नहीं। शेष शब्दों के अर्थ पूर्ववत्।

भावार्थ– मृषावाद दूसरा अधर्म द्वार है। इसको खुला रखने से दूसरे अन्य पाप भी आसानी से प्रविष्ट होते रहते हैं। अतः पाप-प्रवृत्ति को कम करने के लिए दूसरे महाव्रत में मृषावाद का विरमण किया जाता है। इस व्रत के लिए साधु यह प्रतिज्ञा करता है कि छोटा, बड़ा, सहेतुक या अहेतुक किसी भी प्रकार का, मैं मृषा (असत्य-झूठ) भाषण करूँगा नहीं, करवाऊँगा नहीं, मृषा भाषण करने वालों का अनुमोदन भी करूँगा नहीं, तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिए। अज्ञानवश जो पहले मृषा भाषण किया है, उसके लिए प्रतिक्रमण करता हूँ। आत्मसाक्षी से उस पाप की निन्दा और गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ एवं पापकारी आत्मा को उससे व्युत्सर्ग (पृथक्) करता हूँ।

मूल– अहावरे तच्चे भंते! महव्वए अदिन्नादाणाओ वेरमणं (विरमणं)। सव्व भंते! अदिन्नादाणं पच्चक्खामि, से गामे वा नगरे वा, रण्णे वा, अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा (गिण्हेज्जा), नेवन्नेहिं अदिन्नं गिण्हाविज्जा (गिण्हावेज्जा), अदिन्नं गिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि। तच्चे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं।।13।।

अन्वयार्थ– अहावरे तच्चे भंते! महव्वए– हे भगवन्! अब आगे तीसरे महाव्रत में। **अदिन्नादाणाओ–** अदत्तादान की। **वेरमणं–** निवृत्ति होती है। **सव्वं भंते! अदिन्नादाणं–** हे भगवन्! सब प्रकार के अदत्तादान का। **पच्चक्खामि–** मैं प्रत्याख्यान करता हूँ। **से गामे वा नगरे वा रण्णे वा–** वह ग्राम में, नगर में या अरण्य (जंगल) में। **अप्पं वा–** थोड़ा हो या। **बहुं वा–** बहुत। **अणुं वा–** छोटी वस्तु हो या। **थूलं वा–** स्थूल हो। **चित्तमंतं वा अचित्तमंतं वा–** सचित्त हो या अचित्त। **नेव सयं अदिन्नं गिण्हिज्जा–** स्वयं बिना दी हुई वस्तु ग्रहण नहीं करूँगा। शेष शब्दों के अर्थ पूर्ववत्।

भावार्थ– तीसरा महाव्रत अदत्तादान विरमण है। अहिंसा और सत्य महाव्रत के पश्चात् अचौर्य महाव्रत आता है। साधु सम्पूर्ण अदत्त (बिना आज्ञा के लेना) का त्यागी होता है। अल्प अथवा बहुत, अणु अथवा स्थूल, सचित्त अथवा अचित्त ऐसे छः प्रकार के अदत्त का ग्रहण मुनि के लिये तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिये वर्जित बतलाया गया है। शिष्य कहता है कि मैं भूतकाल में किये हुए अदत्तादान-पाप का प्रतिक्रमण करता हूँ। आत्म-साक्षी से निन्दा एवं गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूँ तथा अपनी दूषित आत्मा को छहों प्रकार के अदत्तादान से अलग करता हूँ।

छहों प्रकार के अदत्तादान का तीन करण और तीन योग से जीवन भर के लिए परित्याग करता है। वह सब प्रकार के अदत्तादान की विरति में तत्परता से उपस्थित होता है।

मूल– अहावरे चउत्थे भंते! महव्वए मेहुणाओ वेरमणं। सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि, से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा, नेव सयं मेहुणं सेविज्जा, नेवन्नेहिं मेहुणं सेवाविज्जा, मेहुणं सेवंते वि अन्ने न

समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते। पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

चउत्थे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि सव्वाओ मेहुणाओ वेरमणं।।14।।

अन्वयार्थ– अहावरे चउत्थे भंते!- हे भगवन्! अब आगे चौथे। **महव्वए**- महाव्रत में। **मेहुणाओ वेरमणं**- मैथुन अर्थात् कुशील का परित्याग होता है। **सव्वं भंते! मेहुणं पच्चक्खामि**- भगवन्! मैं सर्वथा मैथुन अर्थात् कुशील का परित्याग करता हूँ। **से दिव्वं वा, माणुसं वा, तिरिक्खजोणियं वा**- चाहे वह मैथुन देव सम्बन्धी, मनुष्य सम्बन्धी या तिर्यंच सम्बन्धी हो। **नेव सयं मेहुणं सेविज्जा**- मैं स्वयं मैथुन सेवन नहीं करूँगा। शेष शब्दों का अर्थ पूर्ववत्।

भावार्थ- पहले तीन महाव्रतों में हिंसा, मृषावाद और अदत्तादान का विरमण होता है, जो मैथुन त्याग के बिना यथावत् नहीं पाला जा सकता। अतः अहिंसा, सत्य एवं अचौर्य की निर्दोष आराधना के लिये चौथे महाव्रत में मैथुन का विरमण (त्याग) किया जाता है।

शिष्य प्रतिज्ञा करता है कि "हे भगवन्! मैं देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी किसी प्रकार का मैथुन सेवन करूँगा नहीं, दूसरों को करवाऊँगा नहीं और मैथुन सेवन करने वालों का भला भी जानूँगा नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण, तीन योग से- मन, वाणी और काया से।" वर्तमानकाल की साधना में, भूतकाल की स्मृति-चंचलता उत्पन्न नहीं करें, इस दृष्टि से पूर्व के भोगे हुए भोगों के लिए शिष्य प्रतिक्रमण करता है, निंदा एवं गुरु साक्षी से उसकी गर्हा करके उससे दूषित आत्मा को अलग करता है।

मूल- अहावरे पंचमे भंते! महव्वए परिग्गहाओ वेरमणं। सव्वं भंते! परिग्गहं पच्चक्खामि, से (गामे वा, नगरे वा, रण्णे वा) अप्पं वा, बहुं वा, अणुं वा, थूलं वा, चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा, नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा, नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा, परिग्गहं परिगिण्हंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

पंचमे भंते! महव्वए उवट्ठिओमि, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं।।15।।

अन्वयार्थ– अहावरे पंचमे भंते! महव्वए- भगवन्! अब पंचम महाव्रत में। **परिग्गहाओ वेरमणं**- परिग्रह से निवृत्ति की जाती है। **सव्वं भंते! परिग्गहं पच्चक्खामि**- हे पूज्य! मैं सर्वथा परिग्रह का त्याग करता हूँ। **से**- वह। **अप्पं वा, बहुं वा**- थोड़ा या बहुत। **अणुं वां, थूलं वा**- छोटा अथवा बड़ा। **चित्तमंतं वा, अचित्तमंतं वा**- सचित्त या अचित्त कोई। **नेव सयं परिग्गहं परिगिण्हिज्जा**- परिग्रह स्वयं ग्रहण करूँगा नहीं। **नेवन्नेहिं परिग्गहं परिगिण्हाविज्जा**- दूसरों से परिग्रह ग्रहण करवाऊँगा नहीं। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ- पाँचवें महाव्रत में परिग्रह का सर्वथा विरमण किया जाता है। हिंसा, झूँठ, चोरी, कुशील इन चार पापों के पश्चात् पाँचवाँ पाप परिग्रह कहा गया है।

वीतराग देव ने बतलाया है कि परिग्रह रखना जैसे पाप है, वैसे दूसरों के पास पैसा जमा कराना और करने वाले का अनुमोदन करना भी पाप बन्ध का कारण है। इसीलिये जैन मुनि प्रतिज्ञा करते हैं- "मैं मन, वचन और काया से थोड़ा या बहुत, छोटा या बड़ा, सचित्त या अचित्त किसी भी प्रकार का परिग्रह रखूँगा नहीं, रखाऊँगा नहीं और परिग्रह रखने वाले का भला भी मानूँगा नहीं। पूर्व में जो परिग्रह किया है, उसके लिए प्रतिक्रमण करता हूँ, निन्दा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और उस पूर्व की पापकारी आत्मा का व्युत्सर्ग (अलग) करता हूँ।"

मूल– अहावरे छट्ठे भंते! वए राइभोयणाओ वेरमणं, सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि। से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, नेव सयं राइं भुंजिज्जा, नेवन्नेहिं राइं भुंजाविज्जा, राइं भुंजंते वि अन्ने न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।

छट्ठे भंते! वए उवट्ठिओमि सव्वाओ राइभोयणाओ वेरमणं।।16।।

अन्वयार्थ– अहावरे छट्ठे भंते! वए- इसके बाद हे भगवन्! छठे व्रत में। **राइभोयणाओ वेरमणं-** रात्रि भोजन का वर्जन किया जाता है। **सव्वं भंते! राइभोयणं पच्चक्खामि-** हे भगवन्! मैं सर्वथा रात्रि-भोजन का त्याग करता हूँ। **से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा-** वह भोजन अशन, पान, खादिम या स्वादिम वस्तु के रूप में है। **नेव सयं राइं भुंजिज्जा-** मैं स्वयं रात्रि-भोजन नहीं करूँगा। शेष पूर्ववत्।

भावार्थ- पाँच महाव्रतों के बाद छठे व्रत में रात्रि-भोजन की विरति होती है। भन्ते! मैं सब प्रकार के रात्रि-भोजन का प्रत्याख्यान करता हूँ। अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य इनमें से किसी भी वस्तु का मैं स्वयं रात्रि में उपयोग नहीं करूँगा, दूसरों को भी नहीं खिलाऊँगा और रात्रि में खाने वाले का अनुमोदन भी नहीं करूँगा।

भन्ते! मैं अतीत के रात्रि-भोजन से निवृत्त होता हूँ, निन्दा करता हूँ, गर्हा करता हूँ और दूषित आत्मा को अलग करता हूँ।

मूल– इच्चेयाइं पंच महव्वयाइं - राइभोयण - वेरमण - छट्ठाइं, अत्तहियट्ठयाए उवसंपज्जित्ता णं विहरामि।।17।।

अन्वयार्थ– इच्चेयाइं- इस प्रकार से। **पंच महव्वयाइं-** पाँच महाव्रत और। **राइभोयण वेरमण छट्ठाइं-** छठे रात्रि-भोजन विरमण को। **अत्तहियट्ठयाए-** आत्मा के हितार्थ। **उवसंपज्जित्ता णं-** स्वीकार करके। **विहरामि-** विचरण करता हूँ।

भावार्थ- मैं इन पाँच महाव्रतों और रात्रि-भोजन विरति रूप छठे व्रत को आत्म-कल्याण के लिए स्वीकार कर विचरण करता हूँ।

अहिंसा महाव्रत के सन्दर्भ में: षट्काय विराधना से विरति

मूल– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा, संजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से पुढविं वा, भित्तिं वा, सिलं वा, लेलुं वा, ससरक्खं वा कायं, ससरक्खं वा वत्थं, हत्थेण वा, पाएण वा, कट्ठेण वा, किलिंचेण वा, अंगुलियाए वा, सिलागाए वा, सिलागहत्थेण वा, न आलिहिज्जा, न विलिहिज्जा, न घट्टिज्जा, न भिंदिज्जा, अन्नं न आलिहाविज्जा, न विलिहाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, अन्नं आलिहंतं वा, विलिहंतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।।18।।

अन्वयार्थ– संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय- संयमी- त्यागी-भूतकाल के पाप का शोधन और भविष्य के पाप का त्याग करने वाला। **से भिक्खू वा भिक्खुणी वा-** वह साधु या साध्वी। **दिआ वा (दिया वा)-** दिन में। **वा-** अथवा। **राओ-** रात्रि में। **एगओ-** एकान्त में। **वा-** या। **परिसागओ वा-** सभा में। **सुत्ते-** सोये। **वा-** अथवा। **जागरमाणे वा-** जागृत अवस्था में। **से पुढविं वा-** वह पृथ्वी को। **भित्तिं वा-** नदी तट की दीवार, पर्वत की दरार,

नदी तट की मिट्टी की दरार। **सिलं वा-** शिला या। **लेलुं वा-** ढेले को। **ससरक्खं वा-** सचित्त धूलि से भरे हुए। **कायं-** तन को। **ससरक्खं वा-** सचित्त धूलि आदि से भरे हुए। **वत्थं-** वस्त्र को। **हत्थेण वा-** हाथ से। **पाएण वा-** पैर से। **कट्ठेण वा-** काष्ठ से। **किलिंचेण वा-** खपाटी से। **अंगुलियाए वा-** अंगुलि से। **सिलागाए वा-** लोहमय शलाका से। **सिलागहत्थेण वा-** शलाका समूह से। **न आलिहिज्जा-** आलेखन न करे। **न विलिहिज्जा-** विशेष रेखा न खींचे। **न घट्टिज्जा-** घर्षण न करे। **न भिंदिज्जा-** भेदन न करे। **अन्नं न आलिहाविज्जा-** दूसरों से आलेखन न करावे। **न विलिहाविज्जा-** रेखा न खिंचावे। **न घट्टाविज्जा-** घर्षण करावे नहीं। **न भिंदाविज्जा-** भेदन करावे नहीं। **अन्नं आलिहंतं वा-** दूसरे आलेखन करने वाले। **विलिहंतं वा-** विलेखन करने वाले। **घट्टंतं वा-** घर्षण करने वाले। **भिंदंतं वा-** भेदन करने वाले का। **न समणुजाणिज्जा-** अनुमोदन करे नहीं। **जावज्जीवाए-** जीवनपर्यन्त।

भावार्थ- आचारांग सूत्र के चतुर्थ सम्यक्त्व अध्ययन में प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की हिंसा नहीं करना ही धर्म कहा है। पृथ्वीकाय भी सजीव है। इसलिये हिंसा से उपरत संयमी मुनि दिन हो या रात, एकान्त में हो या समूह में, सुप्त दशा में हो या जागृत दशा में, सचित्त पृथ्वीकाय की किसी भी प्रकार से विराधना नहीं करे।

बादर पृथ्वीकाय के अनेक प्रकार हैं- खान से निकलने वाले सोना, चाँदी, अभ्रक, हीरा और पाषाण आदि। खान में रहे हुए पाषाण आदि का बढ़ना, यह उनकी सजीवता का लक्षण है। अतः प्राणी मात्र के खेदज्ञ प्रभु ने इन पृथ्वीकायिक जीवों की हिंसा को भी अहितकर व अशुभ माना है। अतः संयमी पुरुष धूप, अग्नि, पानी तथा नागरिकों के चलने फिरने आदि से अचित्त रूप में परिणमन पाई हुई पृथ्वी के अतिरिक्त अन्य पृथ्वी पर कोई गमनागमन आदि क्रिया नहीं करते।

मूल- से भिक्खू वा, भिक्खुणी वा, संजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से उदगं वा, ओसं वा, हिमं वा, महियं वा, करगं वा, हरितणुगं वा, सुद्धोदगं वा, उदउल्लं वा कायं, उदउल्लं वा वत्थं, ससिणिद्धं वा कायं, ससिणिद्धं वा वत्थं, न आमुसिज्जा, न संफुसिज्जा, न आवीलिज्जा, न पवीलिज्जा, न अक्खोडिज्जा, न पक्खोडिज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं न आमुसाविज्जा, न संफुसाविज्जा, न आवीलाविज्जा, न पवीलाविज्जा, न अक्खोडाविज्जा, न पक्खोडाविज्जा, न आयाविज्जा, न पयाविज्जा, अन्नं आमुसंतं वा, संफुसंतं वा, आवीलंतं वा, पवीलंतं वा, अक्खोडंतं वा, पक्खोडंतं वा, आयावंतं वा, पयावंतं वा, न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए, तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि।

तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।।19।।

अन्वयार्थ- से भिक्खू वा भिक्खुणी वा- वह साधु अथवा साध्वी जो। **संजय विरय पडिहय पच्चक्खाय पावकम्मे-** संयमवान् पाप से विरक्त, कर्म की स्थिति को कम करने वाला, भविष्य में पाप कर्म का प्रत्याख्यान करने वाला है। **दिआ.... जागरमाणे वा-** दिन में अथवा रात में, एकाकी अथवा समूह में रहे हुए, सोए या जागृत दशा में। **से उदगं वा-** जल को। **ओसं वा-** ओस को। **हिमं वा-** बर्फ को। **महियं वा-** धूँअर का पानी। **करगं वा-** ओला। **हरितणुगं वा-** दूब पर पड़े पानी के बिन्दु। **सुद्धोदगं वा-** आकाश से गिरा हुआ पानी तथा। **उदउल्लं वा कायं-** जल से भीगा हुआ शरीर। **उदउल्लं वा वत्थं-** जल से भीगा हुआ वस्त्र। **ससिणिद्धं वा कायं-** अथवा पानी से चिकास वाले (कुछ-कुछ भीगा हुआ) शरीर। **ससिणिद्धं वा वत्थं-** कुछ कुछ भीगे हुए वस्त्र को। **न आमुसिज्जा-** स्पर्श करे नहीं। **न संफुसिज्जा-** बार बार अधिक स्पर्श करे नहीं। **न आवीलिज्जा-** निचोड़े नहीं। **न पवीलिज्जा-** बार बार निचोड़े नहीं। **न अक्खोडिज्जा-** झटके नहीं। **न पक्खोडिज्जा-** बार बार झटके नहीं। **न आयाविज्जा-** सुखावे नहीं। **न पयाविज्जा-** बार बार सुखावे नहीं। **अन्नं-** दूसरे से। **न आमुसाविज्जा-** स्पर्श करवावे नहीं। **न**

संफुसाविज्जा- बार बार स्पर्श करवावे नहीं। **न आवीलाविज्जा-** निचोड़ावे नहीं। **न पवीलाविज्जा-** विशेष निचोड़ावे नहीं। **न अक्खोडाविज्जा-** झटकावे नहीं। **न पक्खोडाविज्जा-** बार बार झटकावे नहीं। **न आयाविज्जा-** सुखावे नहीं। **न पयाविज्जा-** बार बार सुखावे नहीं। **आमुसंतं वा-** स्पर्श करने वाले। **संफुसंतं वा-** बार बार स्पर्श करने वाले। **आवीलंतं वा-** निचोड़ने वाले। **पवीलंतं वा-** विशेष निचोड़ने वाले। **अक्खोडंतं वा-** झटकाने वाले। **पक्खोडंतं वा-** बार बार झटकाने वाले। **आयावंतं वा-** सुखाने वाले या। **पयावंतं वा-** बार बार सुखाने वाले। **अन्नं-** दूसरों को। **न समणुजाणिज्जा-** भला नहीं समझे। **जावज्जीवाए-** जीवन पर्यन्त।

भावार्थ- संयमी साधु-साध्वी अहिंसा महाव्रत में पृथ्वीकाय के समान सब प्रकार के अप्काय की हिंसा का भी त्याग करते हैं। चाहे किसी प्रकार का जल हो, रात्रि में गिरने वाला ओस, हिम, महिकाय, सूक्ष्म अप्काय, करक-ओले और तृणाग्रवर्ती जलकण हो, उसका भी वे स्पर्श नहीं करते। सचित्त जल से कभी शरीर अथवा वस्त्र गीला हो जाय, हाथ की रेखा तक भी गीली हो जाय तो उसको छूना नहीं, उसका विशेष स्पर्श करना, निचोड़ना, अधिक निचोड़ना, झटकना, विशेष झटकना, धूप में सुखाना तथा बार-बार सुखाना आदि क्रियाएँ स्वयं नहीं करना, दूसरों से ये क्रियाएँ नहीं करवाना, करने वाले का अनुमोदन भी नहीं करना, जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से। भविष्य के लिये ऐसी प्रतिज्ञा करके साधक भूतकाल की ऐसी ही क्रियाओं की निन्दा, गर्हा आदि द्वारा आत्म-शुद्धि करता है।

मूल- से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय - विरय - पडिहय - पच्चक्खाय - पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से अगणिं वा, इंगालं वा, मुम्मुरं वा, अच्चिं वा, जालं वा, अलायं वा, सुद्धागणिं वा, उक्कं वा, न उंजिज्जा, न घट्टिज्जा, न भिंदिज्जा, न उज्जालिज्जा, न पज्जालिज्जा, न निव्वाविज्जा, अन्नं न उंजाविज्जा, न घट्टाविज्जा, न भिंदाविज्जा, न उज्जालाविज्जा, न पज्जालाविज्जा, न निव्वाविज्जा, अन्नं उंजंतं वा, घट्टंतं वा, भिंदंतं वा, उज्जालंतं वा, पज्जालंतं वा, निव्वावंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्न न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।।20।।

अन्वयार्थ- से भिक्खू.....जागरमाणे वा। वह साधु अथवा साध्वी जो संयत विरत पापकर्म का हनन करने वाला तथा भविष्य काल में पाप का त्यागी, दिन में, रात में, एकाकी अथवा सभा में सोये या जागृत दशा में-

से अगणिं वा- वह अग्नि को। **इंगाल वा-** अंगारे को। **मुम्मुरं वा-** मुरमुर (चिनगारी) को। **अच्चिं वा-** अर्चि (दीप-शिखा) को। **जालं वा-** अग्नि की ज्वाला को। **अलायं वा-** जलते हुए लकड़ी के छोर को। **सुद्धागणिं वा-** धुआँरहित आग को। **उक्कं वा-** उल्का आदि को। **न उंजिज्जा-** लकड़ी सरका कर बढ़ावे नहीं। **न घट्टिज्जा-** न घर्षण करे (घिसे)। **न भिंदिज्जा-** न भेदन करे। **न उंजालिज्जा-** अन्य से लकड़ी डालकर जलावे नहीं। **न पज्जालिज्जा-** प्रज्वलित करे नहीं। **न निव्वाविज्जा-** बुझावे नहीं। **अन्नं न उज्जाविज्जा-** अन्य से लकड़ी डालकर बढ़वावे नहीं। **न घट्टाविज्जा-** अग्नि का घर्षण करवावे नहीं। **न भिंदाविज्जा-** भेदन करवावे नहीं। **न उज्जालाविज्जा-** जलवावे नहीं। **न पज्जालाविज्जा-** विशेष जलवावे नहीं। **न निव्वाविज्जा-** बुझवावे नहीं। **अन्नं उंजंतं वा-** लकड़ी डालकर बढ़ाने वाले को। **घट्टंतं वा-** घर्षण करने वाले को। **भिंदंतं-** भेदन करने वाले को। **उज्जालंतं वा-** जलाने वाले को। **पज्जालंतं वा-** बार-बार जलाने वाले को। **निव्वावंतं वा-** बुझाने वाले अन्य को। **न समणुजाणिज्जा-** भला नहीं समझे। **जावज्जीवाए-** जीवन पर्यन्त।

भावार्थ– संयत-विरत आदि गुण वाला साधु षट्काय जीवों की पूर्ण हिंसा का त्यागी होता है। इसलिये तेजस्काय की रक्षा के लिए वह प्रतिज्ञा करता है कि 1. अग्नि 2. अंगार 3. चिनगारी 4. दीप-शिखा 5. ज्वाला 6. जलती हुई लकड़ी का छोर, 7. शुद्ध अग्नि और 8. उल्का-ज्वाला रहित आग तथा पन्नवणा सूत्र में कहे गये विद्युत् आदि को बढ़ावे नहीं, घर्षण करे नहीं, भेदन आदि करे नहीं, करावें नहीं, करने वाले का अनुमोदन करना नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण, तीन योग से। तेजस्काय की विराधना जलाने, बुझाने आदि से स्वयं करूँगा नहीं, दूसरों से जलाने आदि की क्रिया कराऊँगा नहीं तथा करने वाले का अनुमोदन करूँगा नहीं।

जैन साधु अग्निकाय को जलाने, बुझाने आदि-क्रिया में असंख्य जीवों की प्रत्यक्ष हिंसा होती जानकर अग्निकाय के आरम्भ का जीवन भर के लिए सर्वथा त्याग करते हैं। भयंकर से भयंकर अंधकार में भी जैन साधु प्रकाश के किसी भी प्रकार के साधन का उपयोग नहीं करते, किन्तु रजोहरण से यतना करते हुए गमनागमन करते हैं।

मूल– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय पडिहय-पच्चक्खाय पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से सिएण वा, विहुयणेण वा, तालियंटेण वा, पत्तेण वा, पत्तभंगेण वा, साहाए वा, साहाभंगेण वा, पिहुणेण वा, पिहुणहत्थेण वा, चेलेण वा, चेलकन्नेण वा, हत्थेण वा, मुहेण वा, अप्पणो वा कायं, बाहिरं वा वि पुग्गलं, न फूमिज्जा, न वीएज्जा, अन्नं न फूमाविज्जा, न वीआविज्जा, अन्नं फूमंतं वा, वीअंतं वा, न समणुजाणिज्जा, जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।।21।।

अन्वयार्थ– से भिक्खु.....जागरमाणे वा। वह साधु अथवा साध्वी जो संयत, विरत, पाप कर्म का हनन करने वाला तथा भविष्यकाल में पाप का त्यागी है, दिन में या रात में, एकाकी अथवा सभा में, सोये या जागृत दशा में-

से सिएण वा– चामर (चँवर) से। **विहुयणेण वा–** वृक्ष की शाखा, शाखा के टुकड़ों, छाल आदि से बने पंखे से। **तालियंटेण वा–** ताड़पत्र के पंखे से। **पत्तेण वा–** पत्ते से। **पत्तभंगेण वा–** पत्तों के समूह से। **साहाए वा–** वृक्ष की छोटी शाखा से। **साहाभंगेण वा–** शाखा के टुकड़ों से। **पिहुणेण वा–** मोर-पंख से। **पिहुण हत्थेण वा–** मोर-पिच्छी से। **चेलेण वा–** वस्त्र से। **चेलकन्नेण वा–** वस्त्र के छोर से। **हत्थेण वा–** हाथ से। **मुहेण वा–** मुँह से। **अप्पणो वा–** अपने। **कायं–** शरीर को। **बाहिरं वा वि पुग्गलं–** बाहरी पुद्गल अथवा बाहर के किसी पुद्गल को। **न फूमिज्जा–** फूँक नहीं दे। **न वीएज्जा–** बींजणे (पंखे आदि) से हवा न करे। **अन्नं–** दूसरे से। **न फूमाविज्जा–** फूँक नहीं दिलावे। **न वीआविज्जा–** बींजणे से हवा न करावे। **फूमंतं वा–** फूँक देने वाले अथवा। **वीअंतं वा–** बींजणा करने वाले। **अन्नं–** दूसरे को। **न समणुजाणिज्जा–** भला भी नहीं समझे। **जावज्जीवाए–** जीवन पर्यन्त।

भावार्थ– चौथे प्रतिज्ञा सूत्र में साधु-साध्वी वायुकाय की हिंसा टालने की प्रतिज्ञा करते हैं। संयत, विरत आदि गुणवाला साधु दिन में या रात में, किसी भी प्रकार की स्थिति में वायुकाय के जीवों के लिए प्रतिज्ञा करता है कि - चामर से, पंखे से, तालवृंत पत्र या पत्रों के समूह से, वृक्ष की शाखा से, शाखा के टुकड़ों से, मोरपंख से, मोर पिच्छी से, कपड़े या कपड़े के छोर से, हाथ से अथवा मुँह से अपने शरीर या किसी बाह्य पदार्थों पर फूँक मारना नहीं, पंखी से हवा करना नहीं। दूसरे से फूँक दिलाना नहीं, पंखे से हवा करवाना नहीं। फूँक मारने अथवा पंखे से हवा करने वाले को भी अच्छा समझना नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से।

महाव्रती की प्रतिज्ञा होती है कि वह वायुकाय की हिंसा करेगा नहीं, दूसरे से करवायेगा नहीं, करने वाले का अनुमोदन भी करेगा नहीं, मन, वचन और काया से। पूर्वकृत पाप के फल को हल्का करने के लिए भिक्षु प्रतिक्रमण कर पापकारी आत्मा की निन्दा करता है, गुरु की साक्षी से गर्हा कर आत्मा को पाप से अलग करता है।

मूल– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा, संजय-विरय- पडिहय पच्चक्खाय-पावकम्मे - दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से बीएसु वा, बीयपइट्ठेसु वा, रूढेसु वा, रूढपइट्ठेसु वा, जाएसु वा, जायपइट्ठेसु वा, हरिएसु वा, हरियपइट्ठेसु वा, छिन्नेसु वा, छिन्नपइट्ठेसु वा, सचित्तेसु वा, सचित्तकोल-पडिनिस्सिएसु वा, न गच्छिज्जा, न चिट्ठिज्जा, न निसीइज्जा, न तुअट्टिज्जा, अन्नं न गच्छाविज्जा, न चिट्ठाविज्जा, न निसिआविज्जा, न तुअट्टाविज्जा, अन्नं गच्छंतं वा, चिट्ठंतं वा, निसीअंतं वा, तुअट्टंतं वा, न समणुजाणिज्जा। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेणं, मणेणं, वायाए, काएणं, न करेमि, न कारवेमि, करंतं पि अन्नं न समणुजाणामि। तस्स भंते! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि, अप्पाणं वोसिरामि।।22।।

अन्वयार्थ– से भिक्खू ..... जागरमाणे वा।। वह साधु अथवा साध्वी जो संयमवान् पाप से विरक्त, कर्म की स्थिति को कम करने वाला, भविष्य में पाप कर्म का प्रत्याख्यान करने वाला, दिन में अथवा रात में, एकाकी अथवा समूह में रहे हुए, सोये या जागृत दशा में-

से बीएसु वा– बीजों पर। **बीयपइट्ठेसु वा–** बीज पर रखे आसन आदि पर। **रूढेसु वा–** अंकुरों पर। **रूढपइट्ठेसु वा–** अंकुरित वनस्पति पर रखे आसनादि पर। **जाएसु वा–** उत्पन्न हुई वनस्पति पर। **जायपइट्ठेसु वा–** उत्पन्न वनस्पति पर रखे हुए आसन आदि पर। **हरिएसु वा–** दूब आदि हरित पर। **हरिय पइट्ठेसु वा–** हरित पर रखे आसनादि पर। **छिन्नेसु वा–** कटी हुई डाल पर। **छिन्न पइट्ठेसु वा–** कटी हुई डाल पर रखे हुए आसन आदि पर। **सचित्तेसु वा–** सचित्त वनस्पति पर। **सचित्त कोलपडिनिस्सिएसु वा–** जिसमें घुन लगे हों, ऐसे काष्ठ आदि पर। **न गच्छिज्जा–** चले नहीं। **न चिट्ठिज्जा–** खड़ा न रहे। **न निसीइज्जा–** बैठे नहीं। **न तुअट्टिज्जा–** सोवे नहीं। **अन्नं–** अन्य (दूसरे) को। **न गच्छाविज्जा–** चलावे नहीं। **न चिट्ठाविज्जा–** खड़ा करावे नहीं। **न निसीआविज्जा–** बैठावे नहीं। **न तुअट्टाविज्जा–** सुलावे नहीं। **अन्नं गच्छंतं वा–** दूसरे चलते हुए को। **चिट्ठंतं वा–** खड़े रहने वाले को। **निसीअंतं वा–** बैठे हुए को। **तुअट्टंतं वा–** सोते हुए को। **न समणुजाणिज्जा–** भला भी न जाने। **जावज्जीवाए–** जीवन पर्यन्त।

भावार्थ– इस सूत्र में वनस्पतिकाय की हिंसा-वर्जन का संकल्प किया है। संयत-विरत आदि गुण वाले साधु-साध्वी कंद-मूल आदि दस प्रकार की वनस्पति में से किसी की भी विराधना नहीं करे। व्यवहार में जिनसे काम पड़ता है, उनको मुख्य रूप से लक्ष्य में रख करके कहा जाता है कि बीजों, अंकुरों, हरित, दूब आदि, तत्काल के कटे शाखा, पत्र, फल, फूल आदि सचित्त पर तथा ऐसे ही बीजादि पर रखे फलक, चटाई आदि पर चलना नहीं, खड़ा नहीं रहना, बैठना नहीं, लेटना नहीं, दूसरों से गमन आदि क्रिया करवाना नहीं, चलते हुए, खड़े रहते, बैठते या सोते हुए अन्य का अनुमोदन भी करना नहीं, जीवन पर्यन्त तीन करण और तीन योग से।

भिक्षु प्रतिज्ञा की भाषा में कहता है- "मन, वचन और काया से वनस्पति का आरम्भ स्वयं करूँगा नहीं, दूसरों से करवाऊँगा नहीं, वनस्पति के आरम्भ करने वाले का अनुमोदन भी करूँगा नहीं। पहले अज्ञानवश जो वनस्पति की विराधना हो चुकी है, उसके लिए प्रतिक्रमण करता हूँ, आत्म-साक्षी से पाप की निंदा करता हूँ, गुरु साक्षी से गर्हा करता हूँ और पापकारी आत्मा को विराधना से अलग करता हूँ।

मूल– से भिक्खू वा भिक्खुणी वा संजय-विरय-पडिहय-पच्चक्खाय- पावकम्मे, दिआ वा, राओ वा, एगओ वा, परिसागओ वा, सुत्ते वा, जागरमाणे वा, से कीडं वा, पयंगं वा, कुंथुं वा, पिवीलियं वा, हत्थंसि वा, पायंसि

वा, बाहुंसि वा, उरूंसि वा, उदरंसि वा, सीसंसि वा, वत्थंसि वा, पडिग्गहंसि वा, कंबलंसि वा, पायपुच्छणंसि वा, रयहरणंसि वा, गोच्छगंसि वा, उडगंसि वा, दंडगंसि वा, पीढगंसि वा, फलगंसि वा, सेज्जंसि वा, संथारगंसि वा, अन्नयरंसि वा, तहप्पगारे उवगरणजाए तओ संजयामेव पडिलेहिय-पडिलेहिय, पमज्जिय-पमज्जिय एगंतमवणिज्जा नो णं संघायमावज्जेज्जा।।23।।

अन्वयार्थ- से भिक्खू ..... जागरमाणे वा।। वह साधु अथवा साध्वी जो संयत, विरत, पाप कर्म का हनन करने वाला, तथा भविष्यत्काल में पाप का त्यागी है, दिन में या रात में एकाकी अथवा सभा में, सोये हुए अथवा जागृत दशा में-

से कीडं वा- कीड़े, लट आदि को। **पयंगं वा-** पतंगे को। **कुंथुं वा-** कुंथु को। **पिवीलियं वा-** चींटी को, **हत्थंसि वा-** हाथ पर। **पायंसि वा-** पैर पर। **बाहुंसि वा-** भुजा पर। **उरूंसि वा-** जाँघ पर। **उदरंसि वा-** पेट पर। **सीसंसि वा-** सिर पर। **वत्थंसि वा-** वस्त्र पर। **पडिग्गहंसि वा-** पात्र पर। **कंबलंसि वा-** कम्बल पर। **पायपुच्छणंसि वा-** पादप्रोंछन अर्थात् पैर पौंछने के वस्त्र पर। **रयहरणंसि वा-** रजोहरण पर। **गोच्छगंसि वा-** पूँजनी पर। **उडगंसि वा-** स्थंडिल (परठना) पात्र पर। **दंडगंसि वा-** दण्ड या लाठी पर। **पीढगंसि वा-** चौकी पर। **फलगंसि वा-** पाटे पर। **सेज्जंसि वा-** शय्या पर। **संथारगंसि वा-** छोटे आसन पर। **अन्नयरंसि वा-** अन्य किसी। **तहप्पगारे-** इसी प्रकार के। **उवगरणजाए-** उपकरण पर। **तओ-** आने पर वहाँ से। **संजयामेव-** यतनापूर्वक। **पडिलेहिय-पडिलेहिय-** देख-देख कर। **पमज्जिय-पमज्जिय-** पूँज-पूँज कर। **एगंतमवणिज्जा-** एकान्त स्थान पर अलग रख दे या कर दे। **नो णं संघायमावज्जेज्जा-** जिससे पीड़ा हो उस प्रकार इकट्ठा करके न रखे।

भावार्थ- उपर्युक्त सूत्र में त्रसकाय की हिंसा से बचने की शिक्षा दी गई है। संयत, विरत आदि गुणों से युक्त साधु-साध्वी दिन में या रात्रि में हर प्रकार की स्थिति में कीट, पतंगा, कुंथु, पिपीलिका आदि त्रसजीव में से शरीर के किसी अंग - हाथ, पैर, भुजा, वक्ष, जंघा, उदर या सिर आदि पर अथवा वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रौंछन, रजोहरण, पूँजनी, स्थंडिल पात्र तथा दण्ड या लाठी, पीठ-चौकी, फलक- पाट, शय्या, संस्तारक तथा अन्य किसी उपकरण पर कोई जन्तु चला आया हो तो उसको वहाँ से यतनापूर्वक सम्यक् प्रकार से देखकर और प्रमार्जन कर के एकान्त में अलग रख दे। इकट्ठा करके रखने से उनको अगर पीड़ा उत्पन्न हो तो ऐसा भी नहीं करे। उनको अलग-अलग छोड़े। साधक शरीर पर चलते किसी भी जीव को यतना से हटाकर एकान्त में छोड़ दे।

अयतना से पाप-कर्म का बन्ध-

मूल- अजयं चरमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं।।1।

अन्वयार्थ- अजयं- अयतनापूर्वक। **चरमाणो य-** चलता हुआ, संयमी। **पाणभूयाइं हिंसइ-** प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है। **बंधइ पावयं कम्मं-** इससे पाप-कर्म का बन्ध करता है। **तं से-** वह पाप-कर्म उस प्राणी के लिये। **कडुयं फलं होइ-** कटुक फल देने वाला होता है।

भावार्थ- अयतना से चलने वाला साधु त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता हैं, क्योंकि जब साधक अगल-बगल में देखते और बात करते हुए चलता है, तब आगे भूमि पर बराबर ध्यान नहीं रहता, परिणामस्वरूप आने वालों से टकरा जाना, ठोकर खाना और जीव-जन्तु पर पैर पड़ना भी सम्भव है। चलने में पूरा ध्यान नहीं रखना ही अयतना है। अयतना से चलने पर विकलेन्द्रिय-कीट पतंगादि प्राण और भूत-वनस्पति आदि स्थावर एवं त्रस जीवों की हिंसा होती है। हिंसा के कारण पाप-कर्म का बन्ध होता है और वह कटु फल देने वाला होता है।

मूल– अजयं चिट्ठमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पाववं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं।।2।।

अन्वयार्थ– अजयं चिट्ठमाणो य– अयतना से खड़ा रहता हुआ संयमी। **पाण भूयाइं हिंसइ–** प्राणियों की हिंसा करता है। **बंधइ पाववं कम्मं–** इससे पाप-कर्म का बन्ध करता है। **तं से कडुयं फलं होइ–** जो उसके लिए कटु फलदायी होता है।

भावार्थ– अहिंसाव्रती को खड़े रहने के लिए भी अविधि का वर्जन करना होता है। सचित्त पृथ्वी आदि पर बिना देखे खड़े रहना, इधर-उधर वर्जित स्थानों की तरफ देखते रहना, हाथ-पैर की चंचलता करना, ये सब अयतना है। अयतना से खड़ा रहने वाला छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है, हिंसा से पाप-कर्म का बन्ध होता है और वह कटु फल देने वाला होता है।

मूल– अजयं आसमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पाववं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं।।3।।

अन्वयार्थ– अजयं आसमाणो य– अयतना से बैठा हुआ। **पाणभूयाइं हिंसइ–** प्राणियों की हिंसा करता है। **बंधइ पाववं कम्मं–** इससे पाप कर्म का बन्ध होता है। **तं से कडुयं फलं होइ–** वह पाप-कर्म उस प्राणी के लिये कड़वा फल देने वाला होता है।

भावार्थ– चलने फिरने की तरह अयतना से बैठना भी हिंसा का कारण है। बिना देखे जीव-जन्तु वाले स्थान में बैठना तथा अंग-उपांगों की चंचलता करते हुए बैठना अयतना है। अयतना से बैठने वाला साधु त्रस-स्थावर जीवों की हिंसा करता है। हिंसा से अशुभ कर्म का बन्ध होता है, जो लोक और परलोक में कटु फलदायी होता है।

मूल– अजयं सयमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पाववं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं।।4।।

अन्वयार्थ– अजयं सयमाणो य– अयतना से शयन करता हुआ। **पाणभूयाइं हिंसइ–** प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है। **बंधइ पाववं कम्मं–** उससे पाप कर्म का बन्ध होता है। **तं से होइ कडुयं फलं–** जो उसके लिये कटु फलदायी होता है।

भावार्थ– अहिंसा व्रत के निर्दोष पालन करने हेतु अधिक सोना, आसन को बिना देखे, बिना पूँजे सोना, आलस्य में करवटें बदलते रहना, यह अयतना है। अयतना से सोने वाला जूँ, खटमल, मच्छर आदि जीवों की हिंसा करता है। हिंसा से पाप-कर्म का बन्ध होता है, जो उसके लिये कड़वे फल देने वाला होता है।

मूल– अजयं भुंजमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पाववं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं।।5।।

अन्वयार्थ– अजयं भुंजमाणो य– अयतना से भोजन करता हुआ। **पाणभूयाइं हिंसइ–** प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है। **बंधइ पाववं कम्मं–** इससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। **तं से होइ कडुयं फलं–** जो उसके लिये कड़वा फलदायी होता है।

भावार्थ– खाना शरीर के लिये आवश्यक है फिर भी उसमें मर्यादा का ध्यान रखना आवश्यक है। भूख से अधिक खाना, तमोगुणी एवं सजीव वस्तु का भक्षण करना, इधर-उधर गिराते हुए भोजन करना, भोजन में

जूठा डालना, स्वादिष्ट पदार्थ खाकर खुशियाँ मनाना, नीरस भोजन की निंदा करना अविधि है, अयतना है। अयतना से खाने वाला, छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है, उससे पाप-कर्म का बन्ध होता है, जो उसके लिये कटु फलदायी होता है।

मूल– अजयं भासमाणो य, पाणभूयाइं हिंसइ।
बंधइ पावयं कम्मं, तं से होइ कडुयं फलं।।6।।

अन्वयार्थ– अजयं भासमाणो ये- अयतना से बोलता हुआ। **पाणभूयाइं हिंसइ-** प्राणभूत की अर्थात् छोटे-बड़े जीवों की हिंसा करता है। **बंधइ पावयं कम्मं-** इससे पाप-कर्म का बन्ध होता है। **तं से होइ कडुयं फलं-** जो उसके लिए कटु फलदायी होता है।

भावार्थ– बोलना लाभकारी है, बोलकर धर्म और नीति का प्रचार किया जा सकता है, किन्तु अविधि से बोला जाय तो वह लाभ के बदले हानि और अमृत के बदले विष का काम कर जाता है। इसीलिये शास्त्रकार कहते हैं कि अयतना से बोलना हिंसा का कारण है। क्रोध लोभादिवश होकर झूठ बोलना अयतना है। अयतना से बोलने वाला त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा करता है। हिंसा से पाप-कर्म का बन्ध होता है, जो उसके लिए कटु फलदायी होता है।

मूल– कहं चरे कहं चिट्ठे, कहमासे कहं सए।
कहं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ।।7।।

अन्वयार्थ– कहं चरे- कैसे चलें। **कहं चिट्ठे-** कैसे खड़े रहें। **कहं आसे-** केसे बैठें। **कहं भुंजंतो-** कैसे भोजन करें और। **भासंतो-** कैसे भाषण करें। **पावं कम्मं न बंधइ-** ताकि पाप कर्म का बन्ध नहीं हो।

भावार्थ– अयतना से चलने, फिरने, बैठने, खड़े रहने, सोने, बोलने और खाने से जीवों की हिंसा होती है। तब शिष्य पूछता है "भगवन्! फिर अहिंसा व्रती को कैसे चलना, कैसे खड़े रहना, कैसे बैठना, कैसे सोना, कैसे बोलना और कैसे भोजन करना चाहिये, जिससे अहिंसाव्रत सुरक्षित रहे और पाप-कर्म का बन्ध भी नहीं हो?" शिष्य की इस जिज्ञासा का शास्त्रकार स्वयं उत्तर देते हुए कहते हैं-

यतना से पाप-कर्म का बन्ध नहीं-

मूल– जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ।।8।।

अन्चयार्थ– जयं चरे- यतना से चलें। **जयं चिट्ठे-** यतना से खड़ा रहें। **जयमासे-** यतना से बैठें। **जयं सए-** यतनापूर्वक सोएँ। **जयं भुंजंतो-** यतनापूर्वक खाएँ और। **भासंतो-** यतनापूर्वक ही बोलें तो। **पावं कम्मं न बंधइ-** पाप-कर्म का बन्ध नहीं होगा।

भावार्थ– शास्त्र कथित विधि से उपयोग पूर्वक चलना, फिरना, खड़ा रहना, भूमि को देखकर बैठना, आसन देखकर यतना से सोना, विधिपूर्वक निर्दोष आहार करना, भाषा समिति की मर्यादा में निर्दोष शास्त्रानुकूल बोलना यतना है। यतना से, उपयोगपूर्वक क्रिया करने से अध्यवसाय शुभ होते हैं, इसलिये पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता।

मूल– सव्वभूयप्पभूयस्स, संमं भूयाइ पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ।।9।।

अन्वयार्थ- सव्वभूयप्पभूयस्स- जो सब जीवों को अपने समान समझता है और। **संमं भूयाइ पासओ-** सभी जीवों को सम्यक् प्रकार से देखता है। **पिहियासवस्स-** इससे वह आश्रव के द्वारों को बन्द कर देता है। **दंतस्स-** ऐसी जितेन्द्रिय आत्मा को। **पावं कम्मं न बंधइ-** पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता।

भावार्थ- जो संसार के सब जीवों को अपने समान समझता है और यह मानता है कि जैसे मेरे पैर में काँटा लगने से वेदना होती है, वैसे ही अन्य जीवों को भी पीड़ा होती है।इस प्रकार जीव-मात्र को आत्मवत् देखता है। फिर कर्मबन्ध के कारणभूत हिंसा, झूठ आदि आश्रवों को विरति भाव के द्वारा रोक देता है तथा शब्द, रूप-स्पर्श आदि इन्द्रिय के विषयों में जो राग नहीं करता है, जिसकी मानसिक वृत्तियाँ भी नियन्त्रित है, उस साधु को पाप-कर्म का बन्ध नहीं होता।

जीवादि तत्त्वों के ज्ञान का महत्त्व

मूल- पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाहीइ सेयपावगं।।10।।

अन्वयार्थ- पढमं नाणं- पहले ज्ञान। **तओ दया-** पीछे दया (आचरण)। **एवं-** इस प्रकार। **सव्व संजए-** सभी संयमी। **चिट्ठइ-** रहते हैं। **अन्नाणी-** अज्ञानी जीव। **किं काही-** क्या करेंगे? **किं वा नाहीइ (नाही) सेय पावगं-** और पुण्य-पाप को कैसे जान सकेंगे?

भावार्थ- चारित्र ज्ञानपूर्वक होने पर ही लाभकारी होता है, इसीलिये कहा है कि पहले ज्ञान और फिर दया। इस प्रकार ज्ञान सहित क्रिया से ही सब संयमी रहते हैं। जिनको जीव-अजीव का ज्ञान नहीं हैं, वे अज्ञानी जीव संयम-धर्म का पालन कैसे करेंगे? वास्तविक ज्ञान के अभाव में कितने ही लोग देवों को बलि देने में धर्म मानते हैं। कुछ सूक्ष्म जीवों की हिंसा में पाप ही नहीं मानते। इस प्रकार बिना ज्ञान के हित-अहित का बोध कैसे होगा? इसीलिये क्रिया-आचरण से पहले ज्ञान आवश्यक है।

मूल- सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणइ सोच्चा, जं सेयं तं समायरे।।11।।

अन्वयार्थ- सोच्चा जाणइ कल्लाणं- संयम-यात्रा का पथिक सुनकर कल्याण-मार्ग को जानता है। **पावगं-** पाप-मार्ग को। **सोच्चा जाणइ-** सुनकर जानता है। **उभयंपि-** दोनों मार्गों को। **सोच्चा जाणइ-** सुनकर जानता है। **जं सेयं-** फिर जो कल्याणकारी हो। **तं समायरे-** उस मार्ग का आचरण करता है।

भावार्थ- ज्ञान प्राप्ति का मुख्य साधन सुनना है। पुण्य और पाप का ज्ञान शास्त्र सुनने से ही होता है। ज्ञानी शास्त्र सुनकर ही पुण्य-पाप का ज्ञान प्राप्त करता है और श्रेय मार्ग को स्वीकार करता है।

मूल- जो जीवे वि न याणेइ, अजीवे वि न याणेइ।
जीवाजीवे अयाणंतो, कहं सो नाहीइ संजमं।।12।।

अन्वयार्थ- जो जीवे वि न याणेइ- जो जीवों को नहीं जानता है और। **अजीवे वि-** अजीव को भी। **न याणेइ-** नहीं जानता है। **जीवाजीवे अयाणंतो-** जीव और अजीव को नहीं जानता हुआ। **सो-** वह। **संजमं-** संयम-धर्म को। **कहं नाहीइ-** कैसे जान सकेगा?

भावार्थ– जो जीव, अजीव और जीवाजीवों को नहीं जानता वह संयम-धर्म को कैसे जानेगा? संयम-धर्म के पालन के लिये जीव और अजीव तत्त्वों को जानना आवश्यक है। क्योंकि वह अज्ञानवश, अजीव को जीव समझ लेगा और जीव को अजीव समझ लेगा।

मूल– जो जीवे वि वियाणेइ, अजीवे वि वियाणेइ।
जीवाजीवे वियाणंतो, सो हु नाहीइ संजमं।।13।।

अन्वयार्थ– जो जीवे वि वियाणेइ- जो जीवों को जानता है। **अजीवे वि वियाणेइ-** अजीवों को भी जानता है। **जीवाजीवे वियाणंतो-** जीव और अजीव को जानता हुआ। **सो-** वह। **हु-** निश्चय से। **संजमं-** संयम-धर्म को। **नाहीइ-** जान सकेगा।

भावार्थ– जीव और अजीव को जानने वाला संयम-धर्म को बराबर जान सकेगा तथा विधिवत् उसका पालन भी कर सकेगा।

जो एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों को जानता है और अजीवों को भी जानता है। जीव को जीव रूप से जानने वाला उनकी रक्षा कर सकेगा। किसी के साथ वैर-भाव भी नहीं रखेगा। जिससे किसी को पीड़ा हो, वैसा व्यवहार भी नहीं करेगा।

मूल– जया जीवमजीवे य, दो वि एए वियाणइ।
तया गइं बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ।।14।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **जीवमजीवे य-** जीव और अजीव। **दो वि एए वियाणइ (वियाणेइ)-** इन दोनों को जान लेता है। **तया सव्वजीवाण बहुविहं-** तब सब जीवों की बहुत भेदों वाली। **गइं-** नरक, तिर्यंच आदि नानाविध गतियों को भी। **जाणइ-** वह साधक जान लेता है।

भावार्थ– जब साधक जीव और अजीव दोनों को सही रूप में जान लेता है, तब वह उन जीवों की नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव रूप विविध गतियों को भेद-प्रभेद के साथ जान लेता है।

मूल– जया गइं बहुविहं, सव्व जीवाण जाणइ।
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ।।15।।

अन्वयार्थ– जया- जब आत्मा। **सव्वजीवाण-** सभी जीवों की। **बहुविहं-** बहुत प्रकार की। **गइं-** नरक, तिर्यंच आदि गति को। **जाणइ-** जान लेता है। **तया-** तब। **पुण्णं च-** पुण्य और। **पावं च-** पाप और। **बंधं-** बन्ध को। **मुक्खं च-** और मोक्ष को भी। **जाणइ-** जान जाता है।

भावार्थ– साधक जब सब जीवों की विविध गतियों को जान लेता है, तब विविध गतियों में भव-भ्रमण करने के कारणभूत पुण्य और पाप कर्मों को भी जान जाता है।

मूल– जया पुण्णं च पावं च, बंधं मुक्खं च जाणइ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।।16।।

अन्वयार्थ– जया- जब साधक। **पुण्णं च-** पुण्य और। **पावं-** पाप को। **बंधं च-** और बन्ध को। **मुक्खं च-** और मोक्ष को भी। **जाणइ-** जान लेता है। **तया-** तब। **जे दिव्वे य-** जो देव और। **जे माणुसे-** जो मनुष्य सम्बन्धी। **भोए-** काम भोग हैं उनकी। **निव्विंदए-** असारता को समझ लेने से उसे उनसे अरुचि हो जाती है।

भावार्थ– पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को जानने वाला साधक दिव्य और मानवी भोगों की असारता का ज्ञाता हो जाता है। वह जान लेता है कि संसार के ये काम भोग किंपाक फल की तरह तत्काल भले ही मधुर लगते हों, पर अन्तिम परिणाम में दुःखदायी होते हैं। ऐसा जान लेने पर देव और मनुष्य भव-सम्बन्धी भोगों से उसका राग छूट जाता है। उसे वैराग्य प्राप्त हो जाता है।

मूल– जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतरं बाहिरं।।17।।

अन्वयार्थ– जे दिव्वे- जो देव-सम्बन्धी। **य-** और। **जे माणुसे-** जो मनुष्य-सम्बन्धी। **भोए-** काम-भोगों की। **जया-** जब। **निव्विंदए-** असारता समझकर उन पर अरुचि करता है। **तया-** तब। **सब्भिंतरं (सब्भिंतर) बाहिरं-** आभ्यंतर और बाह्य। **संजोगं-** संयोग को। **चयइ-** छोड़ देता है।

भावार्थ– ज्ञान से भोगों की असारता समझकर जब देव और मनुष्य भव के भोगों से साधक को विरक्ति होती है, तब बाह्य संयोग-धन, धान्य, पुत्र, मित्रादि तथा आभ्यन्तर संयोग- क्रोध, मान, माया, लोभ आदि का वह परित्याग कर देता है।

मूल– जया चयइ संजोगं, सब्भिंतरं बाहिरं।
तया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।।18।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **सब्भिंतरं बाहिरं-** आभ्यंतर और बाह्य। **संजोगं-** संयोगों को। **चयइ-** छोड़ देता है। **तया-** तब। **मुंडे-** द्रव्य और भाव से मुंडित। **भवित्ताणं-** होकर। **अणगारियं-** अणगारवृत्ति को। **पव्वइए-** ग्रहण करता है।

भावार्थ– जब धन-धान्यादि द्रव्य संयोगों और क्रोध, लोभादि भाव संयोगों का त्याग कर देता है, तब वह साधक मुंडित होकर श्रमण-धर्म को स्वीकार करता है।

मूल– जया मुंडे भवित्ताणं, पव्वइए अणगारियं।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।।19।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **मुंडे-** द्रव्य और भाव से मुंडित। **भवित्ताणं-** होकर। **अणगारियं-** अणगारवृत्ति को। **पव्वइए-** ग्रहण करता है। **तया-** तब। **उक्किट्ठं-** उत्कृष्ट और। **अणुत्तरं-** सर्वश्रेष्ठ। **संवरं धम्मं-** संवर-धर्म को। **फासे-** स्पर्श करता है।

भावार्थ– साधक जब द्रव्य से सिर मुंडन और भाव से कषाय मुंडन करके प्रव्रज्या (दीक्षा) स्वीकार करता है, तब हिंसा, असत्य आदि सम्पूर्ण आश्रव-त्याग रूप सर्वश्रेष्ठ उत्कृष्ट संवर-धर्म को स्पर्श करता है, धारण करता है। इससे पाप-कर्म का आश्रव नहीं होता। अतः पाप-बन्ध से बच जाता है।

मूल– जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।।20।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **उक्किट्ठं-** उत्कृष्ट और। **अणुत्तरं-** प्रधान। **संवरं धम्मं-** संवर-धर्म को। **फासे-** स्पर्श करता है। **तया-** तब। **अबोहिकलुसं कडं-** मिथ्यात्व से उपार्जित। **कम्मरयं-** कर्म रूपी रज को। **धुणइ-** झाड़ देता है, अलग कर देता है।

भावार्थ– जब साधक उत्कृष्ट संवर-धर्म को प्राप्त कर लेता है, तब कर्मों की रज को धुनकर अलग कर देता है- यानी नष्ट कर देता है।

मूल– जया धुणइ कम्मरयं, अबोहिकलुसं कडं।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।।21।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **अबोहिकलुसं कडं-** मिथ्यात्व के परिणाम से उपार्जित किये हुए। **कम्मरयं-** कर्म रूपी रज को। **धुणइ-** झाड़ देता है, अलग कर देता है। **तया-** तब। **सव्वत्तगं-** सभी पदार्थों को जानने वाले। **नाणं-** केवलज्ञान। **च-** और। **दंसणं-** केवल दर्शन को। **अभिगच्छइ-** प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ– साधक जब अज्ञान या कलुषित भाव से पूर्व में संचित की हुई कर्म रज को आत्मा से अलग कर देता है, तब आवरण हटने से साधक अपने अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन और अनन्त शक्ति रूप निज गुणों को प्रकट कर लेता है, जिनके कारण वह विश्व के चराचर सकल पदार्थों को हस्तामलकवत् (हाथ में रखे हुए आँवले की तरह) केवलज्ञान से जानने और केवल दर्शन से देखने लगता है।

मूल– जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।।22।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **सव्वत्तगं-** सर्वव्यापी। **नाणं-** ज्ञान-केवलज्ञान। **च-** और। **दंसणं-** केवलदर्शन को। **अभिगच्छइ-** प्राप्त कर लेता है। **तया-** तब। **जिणो-** रागद्वेष को जीतने वाला जिन। **केवली-** केवली होकर। **लोगं-** लोक। **च-** और। **अलोगं-** अलोक के स्वरूप को। **जाणइ-** जान लेता है।

भावार्थ– जब साधक सर्वव्यापी ज्ञान और सर्वव्यापी दर्शन प्राप्त कर लेता है तब वह पूर्ण ज्ञानी होकर लोक और अलोक को जान लेता है। जहाँ जड़-चेतन रूप अनन्त-अनन्त पदार्थ हैं, वह लोक और जहाँ आकाश द्रव्य मात्र है, उसे अलोक कहा है। केवलज्ञानी लोक और अलोक के सब पदार्थों को द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और गुण से जानते व देखते हैं।

मूल– जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली।
तया जोगे निरूंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।।23।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **जिणो-** रागद्वेष का विजेता। **केवली-** केवलज्ञानी होकर। **लोगं च-** लोक और। **अलोगं-** अलोक को। **जाणइ-** जान लेता है। **तया-** तब। **जोगे-** मन, वचन और काया के योगों का। **निरूंभित्ता-** निरोधकर। **सेलेसिं-** शैलेशीकरण को। **पडिवज्जइ-** प्राप्त करता है यानी चट्टान-शिखरवत् पूर्ण अचल-स्थिर हो जाता है।

भावार्थ– जब आत्मा घातिकर्मों के क्षय से जिन होकर सम्पूर्ण लोक और अलोक को जानता है, तब मन, वाणी और काय के योगों का सम्पूर्ण निरोध करके चौदहवें गुणस्थान में शैल के समान अचल, अकम्प दशा-शैलेशीभाव को प्राप्त करता है। इसकी स्थिति मात्र अ इ उ ऋ लृ इन पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण जितनी होती है।

मूल– जया जोगे निरूंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।।24।।

अन्वयार्थ– जया- जब। **जोगे**- मन, वचन और काय के योगों का। **निरूंभित्ता**- निरोध करके। **सेलेसिं**- शैलेशीकरण, शैलवत् स्थिर भाव को। **पडिवज्जइ**- प्राप्त करता है। **तया**- तब। **कम्मं**- समस्त कर्मों को। **खवित्ताणं**- क्षय करके। **नीरओ**- सम्पूर्ण कर्म रज से रहित होकर। **सिद्धिं**- मोक्ष-सिद्धगति को। **गच्छइ**- प्राप्त कर लेता है।

भावार्थ– जब जीवन का अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहता है, तब केवली योगों का निरोध करते हुए, सर्वप्रथम मनोयोग का निरोध करते हैं, फिर वचनयोग और काययोग का निरोध करते हैं, श्वासोच्छ्वास का निरोध करते हैं और पाँच ह्रस्व अक्षरों के उच्चारण काल में चारों अघाति कर्मों का भी क्षय कर देते हैं। इस तरह आठों ही कर्म क्षय करके, सर्वथा कर्म रज रहित होकर, सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं।

मूल– जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ।।25।।

अन्वयार्थ– जया- जब जीव। **कम्मं**- समस्त कर्मों को। **खवित्ताणं**- क्षय करके। **नीरओ**- सम्पूर्ण कर्म रज से रहित होकर। **सिद्धिं**- मोक्ष में। **गच्छइ**- चला जाता है। **तया**- तब। **लोगमत्थयत्थो**- लोक के अग्र भाग पर स्थित। **सासओ**- शाश्वत। **सिद्धो**- सिद्ध। **हवइ**- हो जाता है।

भावार्थ– जब जीव वेदनीय, नाम, गोत्र और आयु कर्म का भी क्षय करके सर्वथा कर्म रज रहित होकर, सिद्ध गति को प्राप्त करते हैं तब औदारिक तैजस एवं कार्मण सब छोड़ने योग्य पुद्गल वर्गणा को छोड़कर ऋजु श्रेणी से, आकाश क्षेत्र को बिना स्पर्श किये, सकल कर्मों का क्षय कर एक समय में, लोक के अग्र भाग में स्थित होकर, शाश्वत काल के लिए शुद्ध स्वरूप में लीन हो जाते हैं।

मूल– सुहसायगस्स समणस्स, सायाउलगस्स निगामसाइस्स।
उच्छोलणापहोयस्स, दुल्लहा सुगई तारिसगस्स।।26।

अन्वयार्थ– सुहसायगस्स- सुख में आसक्त रहने वाले। **सायाउलगस्स**- साता-सुख हेतु व्याकुल रहने वाले। **निगामसाइस्स**- अधिक सोने वाले। **उच्छोलणापहोयस्स**- शरीर की शोभा के लिए हाथ-पैर आदि धोने वाले। **तारिसगस्स**- वैसे। **समणस्स**- साधु को। **सुगई**- शुभ गति मिलना। **दुल्लहा**- दुर्लभ है।

भावार्थ– जो साधु सुख की इच्छा वाला है, साता-सुख के लिये जो मन की अधीरता के कारण आकुल रहता है, समय से अधिक सोता है और मुलायम बिस्तर पर आराम से सोना चाहता है, बार-बार हाथ-पैर धोता एवं पानी का विशेष उपयोग करता है, उसकी सुगति दुर्लभ होती है।

मूल– तवोगुणपहाणस्स उज्जुमइ, खंतिसंजमरयस्स।
परीसहे जिणंतस्स 'सुलहा सुगई' तारिसगस्स।।27।।

अन्वयार्थ– तवोगुण पहाणस्स- तपस्या रूपी गुणों से प्रधान। **उज्जुमइ**- सरल मति। **खंतिसंजमरयस्स**- क्षमा और संयम में रमण करने वाले। **परीसहे**- परीषहों को। **जिणंतस्स**- जीतने वाले। **तारिसगस्स**- वैसे साधु को। **सुगई**- शुभ गति। **सुलहा**- सुलभ है, सरलता से प्राप्त होती है।

भावार्थ– जो तप-गुण की प्रधानता वाला है, सदा बाह्य एवं आभ्यन्तर तप करता रहता है, सरल मति वाला, क्षमा एवं 17 प्रकार के संयम में रमण करता है, भूख-प्यास आदि परीषहों को जीतने वाला है, कष्ट आने पर कभी घबराता नहीं है, वैसे साधक की सुगति सुलभ होती है।

मूल– पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।
जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं य।।28।।

अन्वयार्थ– **जेसिं**- जिनको। **तवो**- तपस्या। **य**- और। **संजमो**- संयम। **खंती**- क्षमा। **य**- और। **बंभचेरं**- ब्रह्मचर्य। **पिओ**- प्रिय हैं ऐसे साधक यदि। **पच्छावि**- पिछली अवस्था में भी। **पयाया**- साधना-मार्ग को स्वीकार करते हों तो। **ते**- वे। **खिप्पं**- शीघ्र। **अमरभवणाइं**- स्वर्गलोक को। **गच्छंति**- प्राप्त करते हैं।

भावार्थ– पिछली अवस्था में दीक्षा ग्रहण करके भी वे साधक शीघ्र स्वर्गलोक को प्राप्त करते हैं, जिनको तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य के सद्गुण प्रिय हैं। साधना के फलस्वरूप वे साधक देवगति के सुफल प्राप्त करते हैं।

मूल– इच्चेयं छज्जीवणियं, सम्मद्दिट्ठी सया जए।
दुल्लहं लहित्तु सामण्णं, कम्मुणा ण विराहिज्जासि।।29।। त्ति बेमि

अन्वयार्थ– **इच्चेयं**- पूर्वोक्त स्वरूप वाले। **छज्जीवणियं**- षड्जीवनिकाय के जीव समूह की। **सम्मद्दिट्ठी**- सम्यग् दृष्टि साधक। **सया**- सदा। **जए**- यतना करे। **दुल्लहं**- दुर्लभ। **सामण्णं**- श्रमण-धर्म को। **लहित्तु**- प्राप्त कर। **कम्मुणा**- मन-वचन-काया की क्रिया से। **ण विराहिज्जासि**- कभी विराधना नहीं करे। **त्ति बेमि**- श्री सुधर्मा स्वामी श्री जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जैसा मैंने भगवान महावीर स्वामी से सुना है, वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ।

भावार्थ– इस प्रकार पूर्वकथित, इस षड्जीवनिकाय के जीव समूह की सम्यक् दृष्टि साधक सदा यतना करे। दुर्लभ श्रमण-धर्म को पाकर तन, मन और वाणी से उसकी विराधना-खण्डना न हो, इसका सदा ध्यान रखना चाहिये। ऐसा मैं कहता हूँ।

।। चतुर्थ अध्ययन समाप्त ।।

तत्त्व विभाग-

लघुदण्डक का थोकड़ा

जीवाजीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में 24 दण्डक के जीवों का वर्णन है, उसके आधार से लघुदण्डक का थोकड़ा इस प्रकार है-

गाथा-

नेरइआ असुराई, पुढवाई बेइंदियादओ चेव।
पंचिंदिय-तिय-नरा, वंतर-जोइसिय-वेमाणी।।1।।

चौबीस दण्डकों के नाम-

1. सात नारकी का एक दण्डक।
2-11. असुरकुमारादि दस भवनपति के दस दण्डक।
12-16. पृथ्वीकायादि पाँच स्थावर के पाँच दण्डक।
17-19. बेइन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक।
20. तिर्यंच पंचेन्द्रिय का एक दण्डक।
21. मनुष्य का एक दण्डक।
22. वाणव्यन्तर देवों का एक दण्डक।
23. ज्योतिषी देवों का एक दण्डक।
24. वैमानिक देवों का एक दण्डक।

ये चौबीस दण्डक हुए।

संग्रहणी गाथाएँ-

सरीरोगाहण-संघयण-संठाण-कसाय-तह य हुंती सन्नाओ।
लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती।।1।।
दिट्ठी दंसण नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे।।
उववाय ठिई मरण चवण गइरागई चेव।।2।।
पाणे जोगे।

अर्थ- 1. शरीर, 2. अवगाहना, 3. संहनन, 4. संस्थान, 5. कषाय, 6. संज्ञा, 7. लेश्या, 8. इन्द्रिय, 9. समुद्घात, 10. संज्ञी, 11. वेद, 12. पर्याप्ति, 13. दृष्टि, 14. दर्शन, 15. ज्ञान, 16. अज्ञान, 17. योग, 18. उपयोग, 19. आहार, 20. उत्पाद, 21. स्थिति, 22. मरण, 23. च्यवन, 24. गति-आगति, 25. प्राण और 26. योग।✦

✦ जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में प्राण और योग, ये दो अन्तिम द्वार नहीं है।

1. शरीर द्वार : उत्पत्ति समय से जो जीर्ण-शीर्ण अर्थात् विनाश होने वाला हो, उसे शरीर कहते हैं। इसके पाँच भेद हैं- 1. औदारिक, 2. वैक्रिय, 3. आहारक, 4. तैजस और 5. कार्मण शरीर।

2. अवगाहना द्वार : शरीर व आत्म-प्रदेश जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहित करे, रोके उसे अवगाहना कहते हैं।

3. संहनन द्वार : हड्डियों की रचना विशेष को संहनन कहते हैं। इसके छः भेद हैं- 1. वज्रऋषभ नाराच संहनन, 2. ऋषभ नाराच संहनन, 3. नाराच संहनन, 4. अर्धनाराच संहनन, 5. कीलिका संहनन, 6. सेवार्त्तक संहनन।

4. संस्थान द्वार : नाम कर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति विशेष को संस्थान कहते हैं- इसके छः भेद हैं- समचौरस, 2. न्यग्रोध परिमण्डल, 3. सादि, 4. वामन, 5. कुब्जक और 6. हुण्डक संस्थान।

5. कषाय द्वार : कष् अर्थात् संसार, आय अर्थात् वृद्धि, जिससे संसार बढ़े, उसे कषाय कहते हैं- इसके चार भेद हैं- 1. क्रोध, 2. मान, 3. माया और 4. लोभ कषाय।

6. संज्ञा द्वार : आहारादि की अभिलाषा करना संज्ञा है। इसके चार भेद हैं- 1. आहार, 2. भय, 3. मैथुन और 4. परिग्रह संज्ञा।

7. लेश्या द्वार : जो शक्ति आने वाले कर्मों को आत्मा के साथ चिपका देवे, उसे लेश्या कहते हैं। अथवा योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणामों को लेश्या कहते हैं। इसके छः भेद हैं- 1. कृष्ण, 2. नील, 3. कापोत, 4. तेजो, 5. पद्म और 6. शुक्ल लेश्या।

8. इन्द्रिय द्वार : शरीर के जिन अवयवों से शब्दादि विषयों का ज्ञान होता है, उन्हें इन्द्रिय कहते हैं, अथवा जीव द्वारा शब्दादि विषयों को जिन साधनों से जाना जाता है, वे इन्द्रियाँ कहलाती हैं। इसके पाँच भेद हैं- 1. श्रोत्र (कान), 2. चक्षु (आँख), 3. घ्राण (नाक), 4. रसना (जीभ) और 5. स्पर्शन इन्द्रिय (सम्पूर्ण शरीर व्यापी त्वचा)।

9. समुद्घात द्वार : मूल शरीर को छोड़े बिना जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है, इसके सात भेद हैं- 1. वेदनीय, 2. कषाय, 3. मारणान्तिक, 4. वैक्रिय, 5. तैजस, 6. आहारक और 7. केवली समुद्घात।

10. संज्ञी द्वार : जिसके मन हो उसे 'संज्ञी' और जिसके मन नहीं हो उसे असंज्ञी कहते हैं।

11. वेद द्वार : वेद मोहनीय कर्म के उदय से जीव की जो विषय-भोग की अभिलाषा होती है, उसे वेद कहते हैं- इसके तीन भेद हैं- 1. स्त्रीवेद, 2. पुरुषवेद, 3. नपुंसकवेद।

12. पर्याप्ति द्वार : आत्मा की वह शक्ति विशेष-जिससे जीव पुद्गलों को ग्रहण करके आहार-शरीरादि रूप में परिणमावे, उसे पर्याप्ति कहते हैं- इसके छः भेद हैं- 1. आहार, 2. शरीर, 3. इन्द्रिय, 4. श्वासोच्छ्वास, 5. भाषा और 6. मनःपर्याप्ति।

13. दृष्टि द्वार : जीव के अन्तःकरण की प्रवृत्ति को दृष्टि कहते हैं। इसके तीन भेद हैं- 1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि और 3. सम्यग् मिथ्या (मिश्र) दृष्टि।

14. दर्शन द्वार : सामान्य रूप से वस्तु के स्वरूप को जानने को दर्शन कहते हैं। इसके चार भेद हैं- 1. चक्षु, 2. अचक्षु, 3. अवधि और 4. केवलदर्शन।

15. ज्ञान द्वार : सम्यक्त्वी द्वारा विशेष रूप से वस्तु को जानना ज्ञान कहलाता है- इसके पाँच भेद हैं- 1. मतिज्ञान, 2. श्रुतज्ञान, 3. अवधिज्ञान, 4. मनःपर्याय ज्ञान और 5. केवल ज्ञान।

16. अज्ञान द्वार : मिथ्यात्वी द्वारा विशेष रूप से वस्तु के स्वरूप को जानना अज्ञान कहलाता है। इसके तीन भेद हैं- 1. मति अज्ञान, 2. श्रुत अज्ञान और 3. विभंगज्ञान।

17. योग द्वार : वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम अथवा क्षय से मन, वचन और काया के होने वाले व्यापार को योग कहते हैं। इसके पन्द्रह भेद हैं- चार मन के- 1. सत्य मनोयोग, 2. असत्य मनोयोग, 3. मिश्र मनोयोग और 4. व्यवहार मनोयोग। चार वचन के- 5. सत्य वचन, 6. असत्य वचन, 7. मिश्र वचन और 8. व्यवहार वचन योग। सात काया के- 9. औदारिक, 10. औदारिक मिश्र, 11. वैक्रिय, 12. वैक्रिय मिश्र, 13. आहारक, 14. आहारक मिश्र और 15. कार्मण काय योग।

18. उपयोग द्वार : जीव के सामान्य-विशेषात्मक बोधरूप व्यापार को उपयोग कहते हैं। इसके बारह भेद हैं- 5 ज्ञानोपयोग, 3 अज्ञानोपयोग और 4 दर्शनोपयोग।

19. आहार द्वार : जिन पदार्थों के सेवन से शरीर पुष्ट होता है, उसे आहार कहते हैं। वह आहार जीव छः दिशाओं से 288 प्रकार का लेता है।

20. उपपात द्वार : जीव जितनी संख्या में उत्पन्न हो, उसे उपपात कहते हैं।

21. स्थिति द्वार : जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे 'स्थिति' कहते हैं।

22. मरण द्वार : जीव एक भव को छोड़कर दूसरे भव को प्राप्त करे, उसे मरण कहते हैं। इसके दो भेद हैं- 1. समोहया मरण- जिस मरण में जीव के प्रदेश ईलिका गति अर्थात् कीड़ी की कतार की तरह निकले, उसे समोहया मरण कहते हैं। 2. असमोहया मरण- जिस मरण में गेंद (दड़ी) के उछलने अथवा बन्दूक की गोली के समान जीव के प्रदेश एक साथ निकले, उसे असमोहया मरण कहते हैं।

23. च्यवन द्वार : जीव के वर्तमान-भव की पर्याय को छोड़ने को च्यवन कहते हैं।

23. गति आगति द्वार : जीव मरकर भवान्तर में जावे उसे गति कहते हैं- इसके पाँच भेद हैं- 1. नरक, 2. तिर्यंच, 3. मनुष्य, 4. देव और 5. सिद्ध गति। भवान्तर से आकर उत्पन्न होने को आगति कहते हैं। इसके चार भेद हैं- 1. नरक, 2. तिर्यंच, 3. मनुष्य और 4. देव गति। दण्डक की अपेक्षा 24 दण्डक से- 24 दण्डक में तथा मोक्ष में जावे।

25. प्राण द्वार : जिसके सद्भाव से जीव जीवित रहे, उसे 'प्राण' कहते हैं। इसके दस भेद हैं- 1. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण, 2. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण, 3. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, 4. रसनेन्द्रिय बल प्राण, 5. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, 6. मनोबल प्राण, 7. वचनबल प्राण, 8. कायबल प्राण, 9. श्वासोच्छ्वास बल प्राण और 10. आयुष्य बल प्राण।

26. योग द्वार : इसके तीन भेद हैं- 1. मनोयोग, 2. वचनयोग और 3. काययोग।

लघुदण्डक के द्वारों का विवरण

एक दण्डक नारकी का और तेरह दण्डक देवता के (भवनपति के 10, वाणव्यन्तर का 1, ज्योतिषी का 1 और वैमानिक का 1 दण्डक) इन 14 दण्डकों पर 26 द्वार कहते हैं-

1. **शरीर-** पावे तीन-वैक्रिय, तैजस और कार्मण।
2. **अवगाहना-** 14 दण्डकों के शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट-
   - पहली नारकी की 7¾ धनुष, 6 अंगुल।
   - दूसरी नारकी की 15½ धनुष, 12 अंगुल।
   - तीसरी नारकी की 31¼ धनुष।
   - चौथी नारकी की 62½ धनुष।
   - पाँचवी नारकी की 125 धनुष।
   - छठी नारकी की 250 धनुष।
   - सातवीं नारकी की 500 धनुष।
   - भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी तथा पहले, दूसरे देवलोक की उत्कृष्ट अवगाहना 7 हाथ की।
   - तीसरे, चौथे देवलोक की 6 हाथ की।
   - पाँचवें, छठे देवलोक की 5 हाथ की।
   - सातवें, आठवें देवलोक की 4 हाथ की।
   - नौवें से बारहवें देवलोक की 3 हाथ की।
   - नव ग्रैवेयक देवलोक की 2 हाथ की।
   - पाँच अनुत्तर विमान की 1 हाथ की।
   - उत्तरवैक्रिय करे तो नारकी में जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी। जैसे सातवीं नारकी की भवधारणीय शरीर की अवगाहना 500 धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो 1000 धनुष की। भवनपति से बारहवें देवलोक तक की जघन्य अवगाहना अंगुल के संख्यातवें भाग की, उत्कृष्ट एक लाख योजन की। नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देव विक्रिया नहीं करते।
3. **संहनन-** संहनन नहीं- नारकी में अशुभ पुद्गल और देवों में शुभ पुद्गल परिणमे।
4. **संस्थान-** नारकी में एक हुण्डक संस्थान तथा देवों में समचौरस संस्थान और उत्तर वैक्रिय शरीर में विविध प्रकार का संस्थान होता है।
5. **कषाय-** नारकी, देवों के 14 दण्डकों में चारों कषाय होती है।
6. **संज्ञा-** नारकी और देवता के 14 दण्डकों में चारों संज्ञा पाई जाती है।

7. **लेश्या-** पहली और दूसरी नारकी में एक कापोत लेश्या। तीसरी नारकी में कापोत और नील लेश्या। चौथी नारकी में एक नील लेश्या। पाँचवी नारकी में नील और कृष्ण लेश्या। छठी नारकी में कृष्ण लेश्या। सातवीं नारकी में महाकृष्ण लेश्या। भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में पहली चार लेश्या होती है- कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या। ज्योतिषी तथा पहले दूसरे देवलोक में तेजो लेश्या। तीसरे, चौथे और पाँचवे देवलोक में पद्म लेश्या। छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या। पाँच अनुत्तर विमान में परम शुक्ल लेश्या।✦

8. **इन्द्रिय-** नारकी और देवों में पाँचों इन्द्रियाँ होती है।

9. **समुद्घात-** नारकी में समुद्घात पावे चार-वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक और वैक्रिय। भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक प्रथम पाँच समुद्घात पावे। नव ग्रैवेयक और पाँच अनुत्तर विमान में समुद्घात पावे पाँच, परन्तु समुद्घात करे तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक। ये वैक्रिय और तैजस् समुद्घात नहीं करते।

10. **सन्नी-** पहली नारकी, भवनपति और वाणव्यन्तर देवों में सन्नी और असन्नी दोनों उत्पन्न होते हैं। असन्नी कुछ देर असन्नी रहकर फिर सन्नी हो जाते हैं। बाकी में सन्नी ही उत्पन्न होते हैं।

11. **वेद-** नारकी में एक नपुंसक वेद पावे। भवनपति, वाणव्यन्तर ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक में वेद पावे दो- स्त्रीवेद और पुरुषवेद। तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक वेद पावे-पुरुषवेद।

12. **पर्याप्ति-** 14 दण्डकों में पर्याप्ति पावे छः।

13. **दृष्टि-** नारकी और भवनपति से लेकर नवग्रैवेयक तक दृष्टि पावे तीनों ही★। पाँच अनुत्तर विमान में एक सम्यग्दृष्टि ही होती है। 15 परमाधामी, 3 किल्विषी में एक मिथ्यादृष्टि ही होती है।

14. **दर्शन-** 14 दण्डकों में दर्शन पावे तीन- चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधि दर्शन।

15. **ज्ञान-** नारकी और देवों में ज्ञान पावे तीन- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।

16. **अज्ञान-** नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान पावे तीन-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंगज्ञान। पाँच अनुत्तर विमान में अज्ञान नहीं होता। 15 परमाधामी, 3 किल्विषी में 3 अज्ञान ही होते हैं, ज्ञान नहीं होते।

17. **योग-** नारकी और देवों में योग पावे ग्यारह- 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के (वैक्रिय शरीर काययोग, वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग और कार्मण शरीर काय योग)।

✦ अनुत्तर विमान में 'परम शुक्ल लेश्या' देव गति की अपेक्षा से है, इसे केवली की परम शुक्ल लेश्या के समान नहीं समझना चाहिये।

★ **टिप्पणी-** नवग्रैवेयक देवों में सभी परम्पराओं में प्राचीन धारणा 2 दृष्टि की (मिश्रदृष्टि को छोड़कर) रही है। किन्तु अब भगवती सूत्र शतक- 13 उद्देशक 1 व 2 तथा शतक 24 उद्देशक- 21 के प्रमाणों तथा जीवाभिगम सूत्र की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के द्वितीय वैमानिकोद्देशक के प्रमाण से नव ग्रैवेयक में 3 दृष्टि मानी गई है- जीवाभिगम सूत्र का मूल पाठ इस प्रकार है-

सोहम्मीसाण देवा किं सम्मादिट्ठी, मिच्छादिट्ठी, सम्मामिच्छा दिट्ठी? तिण्णि वि, जाव अंतिम गेवेज्जा देवा सम्मादिट्ठी वि मिच्छादिट्ठी वि सम्मामिच्छादिट्ठी वि। अणुत्तरोववाइया सम्मादिट्ठी, नो मिच्छादिट्ठी नो सम्मामिच्छादिट्ठी।

जीवाजीवाभिगमसूत्र- सूत्र संख्या- 201 (ब्यावर से प्रकाशित)

18. **उपयोग-** नारकी और देवों में नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ- 3 ज्ञान, 3 अज्ञान और 3 दर्शन। पाँच अनुत्तर विमान में उपयोग पावे छः - तीन ज्ञान और तीन दर्शन। 15 परमाधामी, 3 किल्विषी में उपयोग पावे छः - 3 अज्ञान और तीन दर्शन।

19. **आहार-** नारकी और देव आहार लेवे 288 भेद* का। जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेवे।

20. **उपपात-** नारकी और भवनपति से लगाकर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता उत्पन्न होवे। नौवें देवलोक से लगाकर यावत् सर्वार्थसिद्ध विमान तक जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न होवे।

21. **स्थिति-** समुच्चय नारकी का नेरिया और देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट 33 सागरोपम की।

	जघन्य	उत्कृष्ट
पहली नरक के नेरिये की स्थिति	10 हजार वर्ष	1 सागरोपम
दूसरी " "	1 सागरोपम	3 सागरोपम
तीसरी " "	3 सागरोपम	7 सागरोपम
चौथी " "	7 सागरोपम	10 सागरोपम
पाँचवी " "	10 सागरोपम	17 सागरोपम
छठी " "	17 सागरोपम	22 सागरोपम
सातवीं " "	22 सागरोपम	33 सागरोपम

भवनपति देवों में असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं- चमरेन्द्र और बलीन्द्र। चमरेन्द्रजी के रहने की चमरचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में है। बलीन्द्रजी के रहने की बलिचंचा राजधानी जम्बूद्वीप के मेरू पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में है। चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की, उत्कृष्ट एक सागरोपम की और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 3½ पल्योपम की। शेष नौ जाति के दक्षिण दिशा के भवनपति देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 1½ पल्योपम और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट पौन पल्योपम की।

---

* टिप्पणी- आहार के 288 भेद- 1. पृष्ठ, 2. अवगाढ़, 3. अनन्तरोवगाढ़, 4. सूक्ष्म, 5. बादर, 6. ऊँची दिशा का, 7. नीची दिशा का, 8. तिरछी दिशा का, 9. आदि का, 10 मध्य का, 11 अन्त का, 12. स्वविषयक, 13. अनुक्रम से, 14. नियमा छहों दिशा का, 15. द्रव्य से - अनन्त प्रदेशी द्रव्य, 16. क्षेत्र से - असंख्य प्रदेशावगाढ पुद्गलों का, (17 से 28 तक) काल के 12 भेद- एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय की स्थिति के पुद्गलों का, संख्यात समय की और असंख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवे। (29 से 288 तक) भाव के 260 भेद हैं- पाँच वर्ण, दो गन्ध, पाँच रस, आठ स्पर्श, ये 20 भेद। इनके प्रत्येक के 13 भेद - एक गुण काला, दो गुण यावत् दस गुण काला, संख्यात गुण काला, असंख्यात गुण काला और अनन्त गुण काला। इसी तरह गन्धादि के तेरह-तेरह भेद करने से 20X13= 260 हुए, 260+28= 288 भेद हुए।

बलीन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 4½ पल्योपम। शेष नौ जाति के उत्तर दिशा वाले भवनपति देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम की।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट 1 पल्योपम। उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट आधा पल्योपम।

ज्योतिषी देवों की स्थिति :

ज्योतिषी देवों के पाँच भेद- 1. चन्द्र, 2. सूर्य, 3. ग्रह, 4. नक्षत्र और 5. तारा।

चन्द्र-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट 1 पल्योपम और एक लाख वर्ष। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और 50 हजार वर्ष।

सूर्य-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम और एक हजार वर्ष। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम और पाँच सौ वर्ष।

ग्रह-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट एक पल्योपम। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम।

नक्षत्र-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम। इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट पाव पल्योपम झाझेरी।

तारा-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पाव पल्योपम। उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी।

वैमानिक देवों की स्थिति :

पहले देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम, उत्कृष्ट 2 सागरोपम। उनकी देवियाँ दो प्रकार की हैं- 1. परिगृहीता और 2. अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम, उत्कृष्ट 7 पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम, उत्कृष्ट 50 पल्योपम।

दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट 2 सागरोपम झाझेरी। उनकी भी देवियाँ दो प्रकार की हैं- परिगृहीता और अपरिगृहीता। परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट 9 पल्योपम। अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य 1 पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट 55 पल्योपम।

	जघन्य	उत्कृष्ट
तीसरे देवलोक के देवों की स्थिति	2 सागरोपम	7 सागरोपम
चौथे " "	2 सागरोपम झाझेरी	7 सागरोपम झाझेरी
पाँचवें✦ " "	7 सागरोपम	10 सागरोपम

✦ नव लोकान्तिक देवों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट 8 सागरोपम की भगवती सूत्र शतक 6 उद्देशक 5 में तथा ठाणांग स्थान 8 सूत्र-47 में बतलायी गयी है।

		जघन्य	उत्कृष्ट
छठे	" "	10 सागरोपम	14 सागरोपम
सातवें	" "	14 सागरोपम	17 सागरोपम
आठवें	" "	17 सागरोपम	18 सागरोपम
नौवें	" "	18 सागरोपम	19 सागरोपम
दसवें	" "	19 सागरोपम	20 सागरोपम
ग्यारहवें	" "	20 सागरोपम	21 सागरोपम
बारहवें	" "	21 सागरोपम	22 सागरोपम
पहले ग्रैवेयक	"	22 सागरोपम	23 सागरोपम
दूसरे	" "	23 सागरोपम	24 सागरोपम
तीसरे	" "	24 सागरोपम	25 सागरोपम
चौथे	" "	25 सागरोपम	26 सागरोपम
पाँचवें	" "	26 सागरोपम	27 सागरोपम
छठे	" "	27 सागरोपम	28 सागरोपम
सातवें	" "	28 सागरोपम	29 सागरोपम
आठवें	" "	29 सागरोपम	30 सागरोपम
नौवें	" "	30 सागरोपम	31 सागरोपम
चार अनुत्तर विमान"		31 सागरोपम	33 सागरोपम
सर्वार्थसिद्ध	" "	अजघन्य अनुत्कृष्ट	33 सागरोपम

22. **समोहया असमोहया मरण-** नारकी और देव दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन**- नारकी और भवनपति देव से लगाकर आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे। नौवें देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान तक एक समय में जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता च्यवे।

24. **गति आगति-** पहली नारकी से लगाकर छठी नारकी तक दो गतियों से आवे और दो गतियों में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे और दो दण्डकों में जावे- 20वाँ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 21वाँ मनुष्य का दण्डक। सातवीं नारकी में दो गतियों से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से। एक तिर्यंच गति में जावे। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे (20-21 वाँ) और एक तिर्यंच पंचेन्द्रिय (20वाँ दण्डक) में जावे। भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले, दूसरे देवलोक के देव दो गतियों से आवे और दो गतियों में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे- तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य से। पाँच दण्डक में जावे-पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में। तीसरे देवलोक से लगाकर आठवें देवलोक तक गति-आगति पहली नरकवत्। नौवें देवलोक से लगाकर सर्वार्थसिद्ध विमान के देव-एक मनुष्य गति से

आवे और उसी मनुष्य गति में जावे, दण्डक की अपेक्षा- एक दण्डक से आवे और उसी एक दण्डक में जावे- मनुष्य का दण्डक।

25. **प्राण-** नारकी और देवों में प्राण पावे दस।

26. **योग-** नारकी और देवों में योग पावे तीनों ही।

पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य

1. **शरीर-** चार स्थावर (वायुकाय वर्ज कर) और असन्नी मनुष्य में शरीर पावे तीन-औदारिक, तैजस् और कार्मण। वायुकाय में शरीर पावे चार-उपर्युक्त तीन एवं वैक्रिय शरीर।

2. **अवगाहना-** चार स्थावर (वनस्पतिकाय वर्ज कर) और असन्नी मनुष्य, इनकी अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट अंगुल के असंख्यातवें भाग। किन्तु जघन्य से उत्कृष्ट असंख्यात गुणा है। वनस्पतिकाय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट 1000 योजन झाझेरी, कमलनाल की अपेक्षा से।

3. **संहनन-** सभी में एक सेवार्त्तक संहनन।

4. **संस्थान-** सभी में एक हुण्डक संस्थान।

5. **कषाय-** सभी में चारों कषाय।

6. **संज्ञा-** चारों संज्ञा।

7. **लेश्या-** पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय, इन तीनों के बादर (प्रत्येक) के अपर्याप्त में लेश्या पावे चार- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या और तेजो लेश्या। शेष सभी एकेन्द्रिय और असन्नी मनुष्य में लेश्या पावे तीन-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।

8. **इन्द्रिय-** पाँच स्थावर में एक स्पर्शनेन्द्रिय पावे। असन्नी मनुष्य में पाँचों ही इन्द्रियाँ पावे।

9. **समुद्घात-** चार स्थावर - (वायुकाय वर्ज कर) और असन्नी मनुष्य, इनमें तीन समुद्घात पावे - वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात। वायुकाय✦ में चार समुद्घात पावे - उपर्युक्त तीन और चौथा वैक्रिय समुद्घात।

10. **सन्नी-** सभी असन्नी हैं।

11. **वेद-** सभी में एक नपुंसक वेद पावे।

12. **पर्याप्ति-** पाँच स्थावर में चार पर्याप्ति पावे - आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति। असन्नी मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है।

13. **दृष्टि-** सभी में एक - मिथ्यादृष्टि।

✦ बादर वायुकाय के पर्याप्त में ही वैक्रिय समुद्घात पाती है, शेष वायुकाय के तीन भेदों में तो तीन ही समुद्घात होती है।

14. **दर्शन**- पाँच स्थावर में एक अचक्षुदर्शन होता है। असन्नी मनुष्य में चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ये दो दर्शन होते हैं।

15. **ज्ञान**- पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में ज्ञान नहीं।

16. **अज्ञान**- सभी में मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान ये दो अज्ञान पावे।

17. **योग**- चार स्थावर- पृथ्वी, अप्, तेऊ, वनस्पति और असन्नी मनुष्य, इन पाँचों में योग पावे तीन-औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काय योग। वायुकाय में योग पावे पाँच - उपर्युक्त तीन व वैक्रिय, वैक्रियमिश्र काययोग।

18. **उपयोग**- पाँच स्थावरों में उपयोग पावे तीन-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और अचक्षु दर्शन। असन्नी मनुष्य में उपयोग पावे चार-मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षु दर्शन और अचक्षु दर्शन।

19. **आहार**- पाँच स्थावर आहार 288 भेदों का लेते हैं, जिसमें व्याघात हो तो कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का, कदाचित् पाँच दिशा✦ का और निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का। असन्नी मनुष्य आहार लेवे 288 भेद का, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का।

20. **उपपात**- चार स्थावर एवं असन्नी मनुष्य प्रति समय निरन्तर जघन्य एक-दो-तीन यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे और वनस्पतिकाय में अनन्ता उपजे।

21. **स्थिति**-

	जघन्य	उत्कृष्ट
पृथ्वीकाय की स्थिति✿	अन्तर्मुहूर्त	22 हजार वर्ष की।
अप्काय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	7 हजार वर्ष की।
तेऊकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	3 अहोरात्रि की।
वायुकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	3 हजार वर्ष की।
वनस्पतिकाय की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	10 हजार वर्ष की।
असन्नी मनुष्य की स्थिति	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त की।

22. **मरण**- समोहया, असमोहया मरण- सभी दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन**- जिस प्रकार उपपात द्वार (20 वाँ) है, उसी प्रकार कहना।

24. **गति आगति**- पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तीन गति से आवे- तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देवगति। दो गति में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति में। दण्डक की अपेक्षा 23 दण्डक से आवे- नारकी वर्जकर। दस दण्डक में जावे - (5 स्थावर, 3 विकलेन्द्रिय, 1 तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 1 मनुष्य) तेऊकाय और वायुकाय में दो गति से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से और एक तिर्यंच गति में जावे। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (औदारिक के दस दण्डक उपर्युक्त) नव दण्डक में जावे (औदारिक के दस

✦ व्याघात दसों सूक्ष्म स्थावरों में तथा बादर वायुकाय के अपर्याप्त-पर्याप्त, इस प्रकार 12 जीव के भेदों में ही होता है, शेष में नहीं। अर्थात् वायु के अलावा सभी बादर एकेन्द्रिय जीव नियमा छहों दिशाओं से आहार लेते हैं।

✿ सूक्ष्म स्थावरों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की ही होती है। यहाँ स्थिति बादर की अपेक्षा समझनी चाहिये।

दण्डकों में से मनुष्य का वर्जकर) और असन्नी मनुष्य दो गति से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से। दो गति में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति में। दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवे - (1. पृथ्वीकाय, 2. अप्काय, 3. वनस्पतिकाय, 4-6 विकलेन्द्रिय के तीन, 7. तिर्यंच पंचेन्द्रिय और 8. मनुष्य से)। उपर्युक्त औदारिक के दस दण्डकों में जावे।

25. **प्राण-** पाँच स्थावर में प्राण पावे चार- (स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, काय बल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण और आयुष्य बल प्राण) और असन्नी मनुष्य में प्राण पावे- साढ़े सात (पाँच इन्द्रिय के पाँच, काय बल, श्वास या उच्छ्वास और आयुष्य बल प्राण)।

26. **योग-** पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग पावे-एक काया का।

तीन विकलेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय

1. **शरीर-** तीन विकलेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर पावे तीन- औदारिक, तैजस् और कार्मण।

2. **अवगाहना-** सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, बेइन्द्रिय की उत्कृष्ट 12 योजन, तेइन्द्रिय की 3 गाउ (कोस) और चौरेन्द्रिय की 4 गाउ की।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद-

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट जलचर की 1000 योजन। स्थलचर की प्रत्येक (पृथक्त्व) गाउ। खेचर की प्रत्येक धनुष, उरपरिसर्प की प्रत्येक योजन और भुजपरिसर्प की प्रत्येक धनुष की।

3. **संहनन-** सभी में एक सेवार्त्तक संहनन।

4. **संस्थान-** सभी में एक हुण्डक संस्थान।

5. **कषाय-** सभी में चारों ही कषाय।

6. **संज्ञा-** सभी में चारों ही संज्ञा।

7. **लेश्या-** सभी में तीन-कृष्ण, नील और कापोत लेश्या।

8. **इन्द्रिय-** बेइन्द्रिय में दो- रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय। तेइन्द्रिय में तीन- उपर्युक्त दो व घ्राणेन्द्रिय। चौरेन्द्रिय में चार- उपर्युक्त तीन व चक्षुरिन्द्रिय। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पाँच- श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, रसना और स्पर्शनेन्द्रिय।

9. **समुद्घात-** सभी में समुद्घात पावे तीन- वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक समुद्घात।

10. **सन्नी-** सभी असन्नी हैं।

11. **वेद-** सभी में नपुंसक वेद।

12. **पर्याप्ति**- सभी में पाँच पर्याप्ति (मन वर्जकर)।

13. **दृष्टि**- सभी में दो दृष्टि✦- सम्यग् और मिथ्यादृष्टि।

14. **दर्शन**- बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में एक अचक्षु दर्शन। चौरेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो दर्शन-चक्षुदर्शन और अचक्षु दर्शन।

15. **ज्ञान**- सभी में दो ज्ञान- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान।

16. **अज्ञान**- सभी में दो अज्ञान- मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान।

17. **योग**- सभी में योग पावे चार- व्यवहार वचन, औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काय योग।

18. **उपयोग**- बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में पाँच उपयोग- दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक अचक्षु दर्शन। चौरेन्द्रिय और पाँच असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छह- उपर्युक्त पाँच व चक्षु दर्शन।

19. **आहार**- सभी छह दिशाओं से 288 भेद का लेते हैं।

20. **उपपात**- सभी में एक समय में जघन्य एक-दो-तीन यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उत्पन्न होते हैं।

21. **स्थिति**- सभी की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट बेइन्द्रिय की 12 वर्ष, तेइन्द्रिय की 49 अहोरात्रि, चौरेन्द्रिय की छह माह की। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

    इन पाँचों की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट जलचर की एक करोड़ पूर्व, स्थलचर की 84 हजार वर्ष, खेचर की 72 हजार वर्ष, उरपरिसर्प की 53 हजार वर्ष और भुजपरिसर्प की 42 हजार वर्ष की।

22. **समोहया असमोहया मरण**- सभी दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन**- सभी में एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे।

24. **गति आगति**- तीन विकलेन्द्रिय में दो गति से आवे और दो गति में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति। दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे और दस दण्डक में जावे- दस दण्डक औदारिक के। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो गति से आवे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति से और चार गति में जावे- (चारों गतियाँ) दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (दस दण्डक औदारिक के) और 22 दण्डक में जावे- ज्योतिषी और वैमानिक ये दो दण्डक वर्जकर।

25. **प्राण**- बेइन्द्रिय में प्राण पावे छह- रसनेन्द्रिय बल प्राण, स्पर्शनेन्द्रिय बल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास बल और आयुष्य बल प्राण। तेइन्द्रिय में प्राण पावे सात- उपर्युक्त छह एवं घ्राणेन्द्रिय

✦ तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्ता में ही 2 दृष्टि होती है तथा 2 ज्ञान, 2 अज्ञान, 2 दर्शन ये 6 उपयोग होते हैं। पर्याप्ता में तो एक मिथ्यादृष्टि ही होती है तथा 2 अज्ञान, 2 दर्शन, ये 4 उपयोग ही होते हैं।

बल प्राण। चौरेन्द्रिय में प्राण पावे आठ- उपर्युक्त सात व चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण। असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे नव- उपर्युक्त आठ व श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण।

26. **योग-** सभी में योग पावे दो- वचन और काय योग।

सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय

1. **शरीर-** सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर पावे चार- औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण।
2. **अवगाहना-** सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प। सभी की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट जलचर की 1000 योजन, स्थलचर की 6 गाउ, खेचर की प्रत्येक धनुष, उरपरिसर्प की 1000 योजन और भुजपरिसर्प की प्रत्येक गाउ की।

   सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय वैक्रिय लब्धि का प्रयोग करे तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पृथक्त्व सौ (जघन्य 200 उत्कृष्ट 900) योजन।✦
3. **संहनन-** छहों संहनन।
4. **संस्थान-** छहों संस्थान।
5. **कषाय-** चारों कषाय।
6. **संज्ञा-** चारों संज्ञा।
7. **लेश्या-** छहों लेश्या।
8. **इन्द्रिय-** पाँचों इन्द्रियाँ।
9. **समुद्घात-** समुद्घात पावे पाँच- वेदनीय, कषाय, मारणान्तिक, वैक्रिय और तैजस्।
10. **सन्नी-** सभी सन्नी है, असन्नी नहीं।
11. **वेद-** तीनों वेद।
12. **पर्याप्ति-** छहों पर्याप्ति।
13. **दृष्टि-** तीनों दृष्टि।
14. **दर्शन-** दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन।
15. **ज्ञान-** ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान।
16. **अज्ञान-** तीनों अज्ञान।

✦ करोड़ पूर्व या इससे कम स्थिति वाले सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय ही वैक्रिय लब्धि का प्रयोग कर सकते हैं, इससे ऊपर की स्थिति वाले नहीं।

17. **योग**– योग पावे 13- 4 मन के, 4 वचन के और 5 काया के- औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र और कार्मण काययोग।

18. **उपयोग**– उपयोग पावे नौ- तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन।

19. **आहार**– आहार 288 भेद का छहों दिशाओं से।

20. **उपपात**– एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता उपजे।

21. **स्थिति**– सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद- जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प।

सभी की स्थिति जघन्य-अन्तर्मुहूर्त। उत्कृष्ट-जलचर की एक करोड़ पूर्व। स्थलचर की तीन पल्योपम। खेचर की पल्योपम के असंख्यातवें भाग। उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प की एक-एक करोड़ पूर्व की।

22. **मरण**– समोहया असमोहया दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं।

23. **च्यवन**– एक समय में जघन्य 1-2-3 यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता च्यवे।

24. **गति**– चारों गति और चौबीस दण्डक से आते हैं और चारों गति, चौबीस दण्डक में जाते हैं।

25. **प्राण**– प्राण पावे दसों ही।

26. **योग**– योग पावे तीनों ही।

गर्भज मनुष्य

1. **शरीर**– पाँचों ही।

2. **अवगाहना**– जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग। उत्कृष्ट तीन गाउ की।

काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज मनुष्यों की अवगाहना इस प्रकार है-

पहले आरे के आरम्भ में	तीन गाउ
पहला पूर्ण होते और दूसरे के आरम्भ में	दो गाउ
दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के आरम्भ में	एक गाउ
तीसरा पूर्ण होते और चौथे के आरम्भ में	पाँच सौ धनुष
चौथा उतरते और पाँचवाँ लगते	सात हाथ
पाँचवाँ उतरते और छठा लगते	दो हाथ✦

✦ जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति द्वितीय वक्षस्कार में अवसर्पिणी के पाँचवें आरे में बहुत हाथ की अवगाहना बताई है और छठे आरे के अन्त तक उत्कृष्ट एक हाथ की अवगाहना बताई है। इन आधारों से पाँचवें आरे के उतरते व छठा आरा लगते 2 हाथ की और छठा आरा उतरते एक हाथ की अवगाहना मनुष्य की समझी जाती है। जैन धर्म का मौलिक इतिहास

छठा आरा उतरते एक हाथ

यह उत्कृष्ट अवगाहना है। जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय अंगुल के असंख्यातवें भाग है। पहले से तीसरे आरे तक के युगलिकों की जघन्य अवगाहना उत्कृष्ट से देशऊणी (कुछ कम) होती है और उत्कृष्ट अवगाहना पूरी होती है।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उल्टा होता है। यदि मनुष्य वैक्रिय करे तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट एक लाख योजन झाझेरी।★

3. **संहनन**– छहों।
4. **संस्थान**– छहों।
5. **कषाय**– चारों और अकषायी भी।
6. **संज्ञा**– चारों और नो संज्ञा बहुता भी।
7. **लेश्या**– छहों और अलेशी भी।
8. **इन्द्रिय**– पाँचों और अनिन्द्रिय भी।
9. **समुद्घात**– सातों।
10. **संज्ञी**– संज्ञी है, असंज्ञी नहीं और नो सन्नी नो असन्नी भी।
11. **वेद**– तीनों, अवेदी भी।
12. **पर्याप्ति**– छहों।
13. **दृष्टि**– तीनों।
14. **दर्शन**– चारों।
15. **ज्ञान**– पाँचों ज्ञान।
16. **अज्ञान**– तीनों अज्ञान।
17. **योग**– पन्द्रह और अयोगी भी।

(पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म.सा. द्वारा रचित) भाग 1, पृष्ठ 685 तृतीय संस्करण में पाँचवाँ आरा उतरते व छठा लगते 2 हाथ तथा इसी के पृष्ठ 687 में छठा आरा उतरते 1 हाथ की अवगाहना मनुष्य की बताई है। टीका ग्रंथों में पाँचवाँ आरा उतरते एक हाथ की अवगाहना भी उपलब्ध होती है। जैन तत्त्व प्रकाश, पृष्ठ 100 पर एक हाथ की, 'कल्पलता व्याख्या' पृष्ठ 10 पर 'नराणां एक हस्त प्रमाण शरीरं' आदि उपलब्ध है। जैनेन्द्र सिद्धान्त कोष में दिगम्बर मान्यता के अनुसार 3 अथवा 3½ हाथ का उल्लेख है। प्रवचन सारोद्धार द्वार 160, गाथा 1037 पर दो हाथ का भी उल्लेख है। 'तत्त्व केवली गम्य'

★ करोड़ पूर्व या इससे कम की स्थिति वाले सन्नी, पर्याप्त मनुष्य ही वैक्रिय शरीर कर सकते हैं। इससे ऊपर की स्थिति वाले विक्रिया नहीं करते हैं।

18. उपयोग- बारह सभी।

19. आहार- छहों दिशा से 288 बोलों का आहार लेते हैं और अनाहारक भी।

20. उपपात- जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट-संख्याता।

21. स्थिति- जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम। काल की अपेक्षा अवसर्पिणी काल में-

पहले आरे के प्रारम्भ में	3 पल्योपम।
पहला उतरते और दूसरा लगते	2 पल्योपम।
दूसरा उतरते और तीसरा लगते	1 पल्योपम।
तीसरा उतरते और चौथा लगते	1 करोड़ पूर्व।✦
चौथा उतरते और पाँचवा लगते	एक सौ वर्ष झाझेरी।
पाँचवा उतरते और छठा लगते	20 वर्ष।
छठा आरा उतरते	16 वर्ष।

यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई गई है। तीसरे आरे तक के मनुष्यों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देश-ऊणी (कुछ कम) होती है। उत्सर्पिणी काल में इससे उल्टी होती है।

22. मरण- समोहया और असमोहया दोनों प्रकार का मरण।

23. च्यवन- जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट संख्याता।

24. गति आगति- आगति- चार गति और 22 दण्डक से (तेऊ वायु के वर्जकर)। गति- चारों और सिद्ध गति और 24 दण्डकों में।

25. प्राण- दसों।

26. योग- तीनों और अयोगी भी।

✦ करोड़ पूर्व से अधिक व पाँच सौ धनुष से अधिक अवगाहना वाले युगलिक होते हैं। अवसर्पिणी के प्रथम, द्वितीय (सम्पूर्ण) और तृतीय आरक का बहुभाग तथा उत्सर्पिणी के चौथे (बहुभाग) पाँचवें व छठे आरक में कर्मभूमि में अकर्मभूमि के समान भाव होते हैं।

युगलिक मनुष्य

युगलिक मनुष्यों के भेद- 5 हेमवत, 5 ऐरण्यवत, 5 हरिवास, 5 रम्यक्वास, 5 देवकुरु, 5 उत्तरकुरु और 56 अन्तर्द्वीपज, ये कुल 86 भेद।

1. **शरीर-** तीन- औदारिक, तैजस और कार्मण।
2. **अवगाहना-** हेमवत और ऐरण्यवत में एक गाउ।
   - हरिवास और रम्यक्वास में दो गाउ।
   - देवकुरु और उत्तरकुरु में तीन गाउ।
   - अन्तर्द्वीप में आठ सौ धनुष।

   इनमें जघन्य देशऊणी✦ और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है।
3. **संहनन-** वज्रऋषभ नाराच संहनन।
4. **संस्थान-** समचौरस संस्थान।
5. **कषाय-** चारों।
6. **संज्ञा-** चारों।
7. **लेश्या-** कृष्ण, नील, कापोत और तेजोलेश्या।
8. **इन्द्रिय-** पाँचों।
9. **समुद्घात-** तीन-वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक।
10. **सन्नी-** सन्नी ही हैं, असन्नी नहीं।
11. **वेद-** दो- स्त्रीवेद, पुरुषवेद।
12. **पर्याप्ति-** छहों।
13. **दृष्टि-** 30 अकर्म भूमि में दो दृष्टि- 1. सम्यग् दृष्टि, 2. मिथ्या दृष्टि और 56 अन्तर्द्वीपों में एक मिथ्या दृष्टि।
14. **दर्शन-** दो- चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन।
15. **ज्ञान-** 30 अकर्मभूमि में दो ज्ञान- मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। अन्तर्द्वीपों में ज्ञान नहीं।
16. **अज्ञान-** 30 अकर्म भूमि में मति और श्रुत दो अज्ञान। 56 अन्तर्द्वीपों में भी मति और श्रुत ये दो अज्ञान।

✦ जन्म की अपेक्षा तो जघन्य अवगाहना अंगुल के असंख्यातवें भाग ही होती है।

17. **योग**- ग्यारह- 4 मन के, 4 वचन के और 3 काया के- औदारिक, औदारिक मिश्र और कार्मण काय योग।

18. **उपयोग-** 30 अकर्म भूमि में छह- दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन। 56 अन्तर्द्वीपों में उपयोग चार- दो अज्ञान और दो दर्शन।

19. **आहार**- सभी युगलिक छहों दिशा से 288 भेदों का आहार लेते हैं।

20. **उपपात**- जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट संख्याता।

21. **स्थिति-**

5 हेमवत और 5 ऐरण्यवत की स्थिति	एक पल्योपम।
5 हरिवास और 5 रम्यक्वास की स्थिति	दो पल्योपम।
5 देवकुरु और 5 उत्तरकुरु की स्थिति	तीन पल्योपम।
56 अन्तर्द्वीपों की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग।	

इनमें जघन्य स्थिति कुछ कम और उत्कृष्ट पूर्ण होती है।

22. **मरण**- समोहया असमोहया दोनों प्रकार का मरण।

23. **च्यवन-** जघन्य 1, 2, 3 उत्कृष्ट संख्याता।

24. **गति आगति-** आगति 2- तिर्यंच और मनुष्य से। **गति-** एक- देवगति में। दण्डक की अपेक्षा-तीस अकर्म भूमि की आगति दो दण्डक से- मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय से। **गति-** दण्डक 13 में- 10 भवनपति, 1 वाणव्यन्तर, 1 ज्योतिषी और 1 वैमानिक में।

छप्पन अन्तर्द्वीपों में आगति दण्डक 2 और गति दण्डक 11 में- 10 भवनपति और 1 वाणव्यन्तर में।

25. **प्राण**- दसों।

26. **योग-** तीनों।

सिद्ध भगवान

1. **शरीर-** शरीर नहीं- अशरीरी हैं।
2. **अवगाहना-** आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, मध्यम चार हाथ सोलह अंगुल✦ और उत्कृष्ट 333 धनुष- 32 अंगुल।
3. **संहनन-** नहीं।
4. **संस्थान-** नहीं।
5. **कषाय-** नहीं।
6. **संज्ञा-** नहीं।
7. **लेश्या-** नहीं।
8. **इन्द्रिय-** नहीं।
9. **समुद्घात-** नहीं।
10. **सन्नी-** नहीं।
11. **वेद-** नहीं।
12. **पर्याप्ति-** नहीं।
13. **दृष्टि-** एक सम्यग्दृष्टि।
14. **दर्शन-** एक केवलदर्शन।
15. **ज्ञान-** एक केवलज्ञान।
16. **अज्ञान-** नहीं।
17. **योग-** नहीं।
18. **उपयोग-** दो- केवलज्ञान और केवलदर्शन।
19. **आहार-** नहीं।
20. **उपपात-** एक समय में जघन्य 1-2-3 उत्कृष्ट 108 सिद्ध होवे।
21. **स्थिति-** एक सिद्ध भगवान की अपेक्षा सादि अनन्त और सभी सिद्ध भगवन्तों की अपेक्षा अनादि अनन्त।
22. **मरण-** नहीं।

✦ यह मध्यम अवगाहना तीर्थंकरों की अपेक्षा जघन्य अवगाहना समझनी चाहिये, जबकि साधारण केवलियों की अपेक्षा यह मध्यम है।

23. च्यवन- नहीं।

24. गति आगति- आगति-मनुष्य गति और एक दण्डक से, गति नहीं।

25. प्राण- द्रव्य प्राण नहीं, भाव प्राण 4 हैं- ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति।

26. योग- नहीं।

।। लघुदण्डक का थोकड़ा समाप्त ।।

निबन्ध विभाग-

क्रोध-विजय

क्रोध का स्वरूप- आक्रोश करना, कुपित होना, नाराज होना, गुस्सा करना आदि क्रोध के पर्यायवाची शब्द हैं। हमारे मन अथवा इन्द्रियों के प्रतिकूल जब किसी भी परिस्थिति के निर्माण में जिस पदार्थ या व्यक्ति का हाथ होता है, उस पर हम क्रोध करने लग जाते हैं।

क्रोध उत्पन्न होने के कारण एवं जीतने के उपाय

1. किसी भी व्यक्ति से अगर हमारी कोई वस्तु टूट जाय, बिगड़ जाय, गुम हो जाय या किसी भी अन्य प्रकार की हानि हो जाय तो उस व्यक्ति पर हमें क्रोध आता है।

ऐसे प्रसंग पर सोचना चाहिये कि जिस व्यक्ति से बिगाड़ हुआ, उसने जानबूझकर तो बिगाड़ नहीं किया, अगर यही बिगाड़ मेरे से ही हो जाता तो फिर किस पर क्रोध करता? दूसरी बात क्रोध करने पर भी बिगड़ी हुई, टूटी हुई या गुम हुई वस्तु वापिस तो आ नहीं सकती।

2. दूसरे को सुधारने के लिए हम उसे कोई बात कहें और वह न माने, बार-बार कहने पर भी न माने तो हमको क्रोध आता है।

इस प्रसंग पर ऐसा सोचना चाहिये कि जिस प्रकार मेरी बुरी आदत को छोड़ने के लिये अगर मुझे कोई दस-बीस बार भी कहे तो क्या मैं अपनी बुरी आदत छोड़ सकता हूँ? यदि नहीं तो दूसरों से भी ऐसी आशा क्यों रखें कि ये तो मेरे कहते ही मान जाएँ।

3. कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष में हमारी सच्ची या झूँठी निन्दा करे तब भी हमें क्रोध आ जाता है।

अपनी बुराई सुनकर हमको यह सोचना चाहिए कि जो बात मेरे लिए कही जा रही है, वह बात सच्ची है या झूँठी? यदि निन्दा की बात सच्ची है तब तो मुझे उस व्यक्ति पर क्रोध करने के बजाय उसका उपकार मानना चाहिये। अगर निन्दा की बात झूँठी है तो भी चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं। साँच को आँच क्या है।

4. कोई जड़ वस्तु (पदार्थ) समय पर खराब हो जाय, जैसे जरूरी कार्य से जा रहे हैं और स्कूटर खराब हो जाय, लिखना जरूरी है और पैन खराब हो जाय, रास्ते में गोबर या छिलके आदि पर पैर आ जाने से फिसल जाय तब भी क्रोध आ जाता है।

ऐसे समय भी सोचना चाहिये कि ये तो जड़ पदार्थ हैं। इन पर क्रोध करके या इनको तोड़ने से नुकसान किसका होगा? ठोकर लगने पर या पैर फिसलने पर भी गलती तो मेरी है, फिर निरर्थक क्रोध क्यों करूँ?

अग्नि मुर्दे को जलाती है, पर क्रोध से, बिना अग्नि ही प्राणी स्वयं जलते रहते हैं। क्रोध, अग्नि से ज्यादा दाहक, शस्त्र से ज्यादा मारक तथा जहर से ज्यादा घातक होता है।

करोड़ों वर्षों के जप-तप और अरबों रुपये के दान-देने से भी, क्षण भर की क्षमा-भावना का फल कई गुना अधिक है। कहा भी है-

क्रोड़ पूर्व कोई तप तपे, एक सहे जो गाल।
इणमें नफो है घणो, मेटो मन की झाल।।

क्षमा के आचरण से सारा परिवार सुधर सकता है। घर स्वर्ग के समान बन सकता है। सुख, शान्ति व लक्ष्मी का भी निवास उसी घर में होता है, जिस घर में प्रेम का वातावरण होता है।

क्रोध से हानियाँ-

क्रोधी व्यक्ति से कोई प्रेम नहीं करता। सब उससे दूर रहना चाहते हैं। क्योंकि वे यह समझते हैं, पता नहीं किस बात पर इसको गुस्सा आ जाए और यह हमें हानि पहुँचा बैठे। कहा भी है-

"कोहो पीइं पणासेइ" दशवै. अ./8-38

क्रोध प्रीति का नाश करता है। क्रोधी व्यक्ति किसी से प्रेम नहीं कर सकता। कोई उसका मित्र नहीं बनना चाहता। प्रीति का रस मानव जीवन को सहजतापूर्वक जीने के लिए अति आवश्यक है। जिसके जीवन में प्रीति का रस नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है। जैसे वृक्ष पानी के सिंचन से हरा-भरा रहता है, वैसे ही मानव भी प्रीति के रस से प्रफुल्लित रहता है।

क्रोध को भयंकर विष की उपमा दी गई है। क्रोध से आत्मा में ईर्ष्या, स्वार्थ, द्वेष, अहंकार, छलकपट आदि का जन्म होता है। क्रोध का जहर आत्मा पर धर्म का रंग नहीं चढ़ने देता। जहरीले जानवरों के जहर का प्रभाव तो औषधियों से कम किया जा सकता है। यदि नहीं उतरे तो एक जन्म से ही हाथ धोना पड़ता है, जबकि क्रोध रूपी विष का प्रभाव जन्म-जन्मान्तर तक रहता है।

क्रोध को घुन की उपमा से उपमित किया गया है। जैसे घुन से धान्य (अनाज) खोखला हो जाता है, वैसे ही क्रोध आत्म-गुणों को विनष्ट कर देता है। क्रोध भयंकर आग है जो सर्वप्रथम अपने को ही जलाती है। जब व्यक्ति क्रोध करता है तो उसके शरीर की आकृति बिगड़ जाती है।

क्रोध के प्रकार-

जैनागमों में क्रोध चार प्रकार का बताया गया है-

1. अनन्तानुबन्धी क्रोध- यह क्रोध जीवनपर्यन्त अर्थात् मिथ्यात्व के उदय रहने तक रहता है। यह सम्यक्त्व गुण का घात करता है तथा इसमें मरने वाला नरक गति का अधिकारी बनता है। अनन्त संसार का बन्ध कराने के कारण इसका नाम अनन्तानुबन्धी रखा गया है। यह क्रोध पर्वत में रही हुई दरार की तरह होता है। जैसे पर्वत की दरार को पाटना असम्भव है, वैसे ही अनन्तानुबन्धी क्रोध को मिटाना अत्यन्त कठिन है।

2. अप्रत्याख्यानी- यह क्रोध उत्कृष्ट एक वर्ष पर्यन्त तक बना रहता है। इसके कारण व्यक्ति श्रावक व्रत धारण नहीं कर पाता तथा मरकर तिर्यंच गति में उत्पन्न होता है। इसको तालाब में पड़ी दरार से उपमित किया गया है। जैसे तालाब में पड़ी दरार वर्षा होने पर ही मिटती है, वैसे ही जिसका क्रोध संवत्सरी आदि पर्वों पर ही उपशान्त होता है, वह अप्रत्याख्यानी क्रोध कहलाता है।

3. प्रत्याख्यानावरण- इस क्रोध का काल उत्कृष्ट चार मास पर्यन्त बताया गया है। इसके कारण साधुपने को प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसा व्यक्ति मरकर मनुष्य गति का अधिकारी होता है। इसको बालू रेत में खींची गई रेखा से उपमित किया गया है, जिसे थोड़े से प्रयत्न से पाटना आसान है।

4. संज्वलन- यह क्रोध उत्कृष्ट दो माह तक रहता है तथा यथाख्यात चारित्र प्राप्त नहीं होने देता। इस क्रोध वाला जीव देवगति का अधिकारी होता है। इसको जल में खींची हुई रेखा से उपमित किया जाता है। जल में

रेखा खींचते ही मिट जाती है, उसी प्रकार जिसका क्रोध उफान की तरह आता है और चला जाता है, वह संज्वलन क्रोध है।

क्रोध को कैसे जीते?

क्रोध सभी तरह से हानि पहुँचाने वाला है। इस पर विजय प्राप्त करने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। क्रोध को जीतना बड़ा कठिन है, किन्तु असम्भव नहीं है। दशवैकालिक सूत्र में कहा गया है- **'उवसमेण हणे कोहं' 8/39**

उपशम भाव से क्रोध को नष्ट करो। अर्थात् समभाव से क्रोध को जीतो। हम उपशम भाव रखें, मौन रखें। मौन से बढ़कर क्रोध जीतने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। सामने वाला हमसे कुछ भी कहे, हम मौन धारण करें। जब हम प्रतिवाद नहीं करेंगे तो सामने वाला कितनी देर तक क्रोध करेगा अर्थात् कुछ समय बाद उसका क्रोध शान्त हो जायेगा तथा हमारे मौन धारण करने से झगड़ा, कलह आदि नहीं होगा।

हम सहनशील बनें। किसी ने हमारे प्रतिकूल कार्य किया या हमारी इच्छानुकूल कार्य नहीं किया तो हम कुछ प्रतिक्रिया करने से पूर्व विचार करें। सामने वाले की परिस्थितियों पर भी विचार करें। इच्छाएँ तो आकाश की तरह अनन्त हैं। व्यक्ति संसार में जो चाहता है, वह पूरा नहीं हो पाता है, अतः क्रोध किस पर करना? सदैव विवेक को जागृत करें, क्योंकि जब विवेक जागृत रहता है, उस समय क्रोध आ ही नहीं सकता।

क्रोध-विजय से लाभ-

क्रोध-विजय से क्रोध के कारण होने वाली हानियों से व्यक्ति सहज ही बच जाता है। क्रोध रूपी विकार के दूर हो जाने से आत्मा निर्मल बन जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है-

कोहविजएणं भंते! जीवे किं जणयइ?
कोहविजएणं खंतिं जणयइ। कोह वेयणिज्जं कम्मं
न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। -(अ. 29 सू. 67)

हे भगवन्! क्रोध का त्याग करने से जीव को किस गुण की प्राप्ति होती है?

भगवान ने फरमाया- क्रोध विजय से क्षमाभाव प्राप्त होता है। क्रोध जन्य कर्मों का बन्ध नहीं होता और पूर्व में बन्ध हो गया हो तो वह शीघ्र नष्ट हो जाता है।

क्षमा वीरों का भूषण है। क्षमा करने से जो आनन्द प्राप्त होता है, वह अकथनीय है। क्षमा से शत्रु भी हमेशा के लिए मित्र बन जाते हैं। क्षमा से ही शान्ति प्राप्त होती है तथा इहलोक एवं परलोक दोनों सुखकारी बनते हैं।

मान-विजय

अर्थ एवं महत्त्व-

कषायों में दूसरा कषाय 'मान' बताया गया है। 'मान' का सामान्य अर्थ है अपने को विशेष समझना। अपने सामने दूसरों को कुछ नहीं समझना। इसको हम अहंकार, घमण्ड, अभिमान, मद आदि नामों से भी जानते हैं। इसका उदय होने पर व्यक्ति यथार्थता को भूल जाता है तथा मदोन्मत्त होकर अनेक पापकारी कार्य भी कर डालता है। यह स्वयं के लिए अनर्थकारी व दूसरों के लिए भी अकल्याणकारी होता है। जब मान का उदय होता है तब विनम्रता नष्ट हो जाती है। जीवन में सफलता के लिये विनय अति आवश्यक है। यह मान 'विनय' गुण को नष्ट करने वाला है।

मान-उत्पत्ति के कारण-

1. धन, कुटुम्ब, रूप, बल, बुद्धि आदि की प्राप्ति होने पर व्यक्ति का अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ समझना।
2. उपर्युक्त परिस्थितियों में अपने से ऊँचे और बड़े गुणवानों के प्रति श्रद्धा व आदर का भाव न होना।
3. दूसरे के द्वारा अपनी प्रशंसा सुनकर अपने को महान् समझने की प्रवृत्ति होना।
4. भौतिक वस्तुओं व सुखों में विशेष ममत्व होना।
5. दूसरों को अपने से तुच्छ समझना।
6. पूर्व संचित मान मोहनीय नामक कर्म प्रकृति का उदय होना।
7. अनुकूल परिस्थितियों के हमेशा बनी रहने का मिथ्या भुलावा होना।

मान से होने वाली हानियाँ-

1. इससे दूसरों के प्रति तिरस्कार, द्वेष और नीचा दिखाने की भावना जागृत होती है।
2. कला, बुद्धि आदि जिस-जिस क्षेत्र में व्यक्ति अपने को निपुण समझने लगता है, उस-उस क्षेत्र में उसकी आगे बढ़ने की क्षमता घटने लगती है।
3. ईर्ष्या, द्वेष, कलह, लालच, ममत्व आदि अनेक बुराईयाँ धीरे-धीरे बढ़ती रहती हैं, जिसके फलस्वरूप उत्तरोत्तर दुःख बढ़ता है।
4. मान से विनय, सेवा, सहकारिता, नम्रता आदि गुण नष्ट होते हैं। शास्त्रकारों ने भी कहा है-

'माणो विणय नासणो' दशवै. 8/38

मान को जीतने के उपाय-

मान को जीतना एक दुष्कर कार्य है। फिर भी निम्न प्रकार से मान को जीता जा सकता है-

1. धन, कुटुम्ब, बल, बुद्धि आदि की प्राप्ति होने पर हमेशा अपने से अधिक सामर्थ्यशाली से अपनी तुलना करें।
2. जीवन की क्षणभंगुरता का चिन्तन करें।
3. अनुकूल परिस्थितियों में मान करने पर प्रतिकूल परिस्थितियों में दुःख उठाना पड़ सकता है। अतः अनुकूलता में मान न करें।

4. सभी प्राणियों को समान एवं आत्मवत् समझें। इससे मान की भावना समाप्त हो जाएगी। जब सभी समान हैं तो कौन छोटा एवं कौन बड़ा?
5. सदा बड़ों एवं गुणीजनों का विनय तथा आदर करें।
6. धन-सम्पत्ति आदि यदि बहुतायत में मिली है तो उसका उपयोग दूसरों की सेवा में करें, क्योंकि निःस्वार्थ सेवा मान को गलाती है।

मान-विजय से लाभ

मान-विजय से मान के कारण होने वाली हानियों से सहज ही बचा जा सकता है। मान-विजय से विनय गुण की प्राप्ति होती है। मान-वेदनीय कर्म नहीं बन्धता है तथा पूर्व में बन्धे हुए कर्मों की निर्जरा हो जाती है। जैसा कि उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है- **माणविजएणं मद्दवं जणयइ। माणवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ, पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। 29/69.**

तन का झुकना ही विनय नहीं है, बल्कि मन का झुकना विनय है। विनय से व्यक्ति विद्या का लाभ प्राप्त कर सकता है, क्योंकि गुरु भी विद्या उसी को प्रदान करते हैं, जो विनयी होता है। धनवान, ज्ञानवान एवं विद्वान् बनने के लिए विनीत बनना अति आवश्यक है। विनयी व्यक्ति कड़वी बात का भी मीठा उत्तर देता है। क्रोध आने पर भी चुप रहता है तथा अपराधी को दण्ड देते समय भी कोमल चित्त रखता है। आत्मोत्थान में मान को त्यागना जरूरी है।

माया-विजय

माया दुःखों की जननी है। क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों में से तीन को तो ज्ञानियों ने मणिधर की उपमा दी है, परन्तु माया को नागिन की उपमा दी है। कहा जाता है नाग काटे तो आदमी जीवित रह सकता है, परन्तु नागिन काट ले तो फिर उसका कोई उपाय नहीं होता। इतनी जबरदस्त है यह माया। मायावी, घर में कुटुम्बी जनों को, दुकान में ग्राहकों को, स्कूल में अध्यापकों को और उपाश्रय में धर्म गुरुओं को भी छलता रहता है।

माया-उत्पत्ति के प्रमुख कारण-

1. माया माया के लिये- व्यापार में झूँठ, ठगाई, खोटा नफा, मिलावट, करों की चोरी, विश्वासघातादि सारे कुकृत्य, धन (माया) कमाने की भावना से ही किये जाते हैं।

2. भविष्य की हानि का विचार न होने से- झूँठ, चोरी, ठगी आदि में अगर पकड़ा गया तो राज्य अथवा समाज में कैसी हालत होगी, यह नहीं सोचने के कारण मायापूर्ण व्यवहार किया जाता है।

3. मान के लिए माया- अपने मान, प्रतिष्ठा, अहंकारादि के पोषण के लिए एवं अपने दुर्गुणों को छिपाकर गुणी कहलाने के लिये भी व्यक्ति माया का सेवन करता है।

4. पूर्व संस्कारों से- कई जन्तु जैसे छिपकली, बिल्ली, चीता, बगुला तथा कई मानव पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण जन्म एवं स्वभाव से ही कपटी होते हैं।

5. दूसरों को गुमराह करने के लिए- अपनी स्थिति चाहे वह धन संबंधी हो, चाहे स्वभाव या दुर्गुण सम्बन्धी, वह दूसरों को मालूम न पड़ जाय, इस कारण असली स्थिति को छिपाकर झूँठा दिखावा किया जाता है।

माया से होने वाली हानियाँ

1. जिस प्रकार गुप्त रोग अन्दर अधिक बढ़ता है, इसी तरह माया से दुर्गुणों में अधिक वृद्धि होती है।

2. मायावी व्यक्ति का कोई विश्वास नहीं करता।

3. 'माया मित्ताणि नासेइ' दशवै. 8/38 - माया से मित्रता तथा अच्छे सम्बन्धों का भी नाश होता है।

4. स्त्रीवेद का बन्ध - धर्म क्रिया में थोड़ी सी भी माया करने से स्त्रीवेद का बन्ध हो जाता है, जैसे - माया के सेवन से महाबल मुनि को स्त्रीरूप में तीर्थंकर (मल्लिनाथ) बनना पड़ा।

5. तिर्यञ्च गति का बन्ध - शास्त्रकारों ने तिर्यञ्च गति के चार कारणों में माया और गूढ़ माया को प्रमुख कारण बताए हैं।

माया-विजय के उपाय

1. व्यवहार में दूसरों को ठगना निश्चय में अपने आपको ठगना है, ऐसा विचार बार-बार करते रहना चाहिये।
2. सच्चाई और सरलता मानव जीवन का सार है, यह समझकर जीवन में इनका आचरण करना चाहिये।
3. छिपकर किये जाने वाले पाप सर्वज्ञ तो जानते ही हैं, प्रकृति भी उसका बदला लेती है, यह सोचकर माया के पापों से बचना चाहिये।
4. प्रतिदिन शाम को दिन भर में की गयी प्रवृत्तियों में कहाँ-कहाँ, कितनी-कितनी माया, दिखावा, ठगाई, प्रवंचना आदि का सेवन किया, उसको याद कर भविष्य में ऐसा न करने का दृढ़ संकल्प करना चाहिये।

'सोही उज्जूय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई' -उत्तरा.3/12 ऋजुभूत-सरल व्यक्ति की ही शुद्धि होती है और सरल हृदय में ही धर्म रूपी पवित्र वस्तु ठहरती है, ऐसा विचार कर हृदय को सरल बनाने का प्रयत्न निरन्तर करते रहना चाहिये।

माया-विजय से लाभ -

माया-विजएणं अज्जवं जणयइ। माया-वेयणिज्जं कम्मं न बंधइ। पुव्वबद्धं च निज्जरेइ। उत्तरा. 29/70 - अर्थात् माया-विजय से सरलता आती है। माया-वेदनीय का बन्ध नहीं होता तथा पूर्वबद्ध माया की निर्जरा हो जाती है।

मित्रता जीवन के लिए आवश्यक है। मित्र के सामने सभी सुख दुःख प्रकट किए जा सकते हैं। मित्र बुरे दिनों में मदद भी करता है एवं बुराई से बचाता भी है। अतः जीवन में मैत्री-भावना आवश्यक है। यह मैत्री-भावना माया के नष्ट होने पर ही आ सकती है। अतः मैत्री रूपी रस का रसास्वादन करना है तो माया को त्यागिए। निष्कपट एवं सरल हृदय बनिए। अगर हमारे द्वारा भूल से, असावधानी वश कपट हो गया है तो ध्यान आते ही तुरन्त उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। कहते हैं सुबह का भूला यदि शाम को वापस आ जाए तो उसे भूला नहीं कहते।

लोभ-विजय

लोभी की पहचान –

चार कषायों में अन्तिम कषाय है – लोभ। लोभ अर्थात् लालच अर्थात् और अधिक पाने की लालसा। यह लालसा व्यक्ति में अनेक दुर्गुणों को जन्म देती है। जब लोभ का भूत मन में सवार हो जाता है तब व्यक्ति कर्त्तव्याकर्त्तव्य, हिताहित, अच्छाई-बुराई, न्याय-अन्याय एवं सत्यासत्य को भी भूल जाता है। वह सामने वाले की स्थिति पर तो विचार ही नहीं करता। उसका विवेक कुंठित हो जाता है, क्योंकि उसका उद्देश्य तो अधिकाधिक लाभ कमाना ही होता है। चाहे वह उचित तरीके से हो या अनुचित तरीके से। उसका सारा ध्यान लाभ कमाने में ही लगा रहता है।

लोभ-विजय से लाभ-

उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है- **लोभ विजएणं संतोसं जणयइ। लोभवेयणिज्जं कम्मं न बंधइ। पुव्वबद्धं च निज्जरेइ।।** 29/71- अर्थात् लोभ-विजय से सन्तोष प्राप्त होता है। लोभ-वेदनीय कर्म नहीं बंधता तथा पूर्वबद्ध कर्म की निर्जरा हो जाती है। लोभ-विजय अर्थात् सन्तोष धारण करने का सबसे बडा लाभ है- मानसिक शान्ति। इसके लिये बड़े-बड़े चक्रवर्ती भी राज्य छोड़कर सन्यासी बने हैं। इसका प्रत्यक्ष लाभ तो यह है कि शरीर सदा स्वस्थ रहता है। यही कारण है कि सर्प हवा का भक्षण करके भी दुर्बल नहीं होता, जंगल का हाथी घास खाकर भी दुबला नहीं होता। ऐसे भी कई उदाहरण हैं कि जंगलों में ऋषि मुनि वृक्षों के सूखे पत्ते चबाकर भी बिल्कुल स्वस्थ एवं प्रसन्न रहते थे। सन्तोषी दुःख में भी सुख ही मानता है। राम को जब वन-गमन का आदेश मिला तो उनको विदा देने वाले सैंकड़ों नर नारी आँखों में आँसू बहा रहे थे, परन्तु राम उस समय भी हँसते हुए सबको लौट जाने के लिये कह रहे थे। यह सन्तोष की ही तो महिमा थी।

लोभ, व्यक्ति को मरते दम तक भी सताता रहता है, जबकि सन्तोषी मृत्यु के समय भी हँसता रहता है। बादशाह सिकन्दर जब अपनी अन्तिम साँसें ले रहा था तो उसकी आँखों से आँसू बह निकले। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सिकन्दर महान् होकर भी क्यों रो रहा है? सिकन्दर ने कहा- जिस दौलत के लिए मेरे हाथ आजीवन युद्ध करते रहे हैं, वे ही हाथ आज खाली हो गए हैं।

आया था जो सिकन्दर, दुनियाँ से ले गया क्या?
थे दोनों हाथ खाली, बाहर कफन से निकले।

लोभी लोभ में ही मर जाता है, परन्तु सन्तोषी मर कर भी अमर हो जाता है।

लोभ की उत्पत्ति के कारण-

1. धन या भौतिक पदार्थों को ही सुख का कारण समझने रूप अज्ञान से।
2. अपने से ज्यादा धन या भौतिक पदार्थ वाले को सुखी समझने से।
3. समाज में इज्जत या प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिये।
4. संतोष के सही स्वरूप व उसके लाभ को नहीं समझने से।

5. अपने से नीचे वालों की तरफ कभी दृष्टि नहीं डालने से।
6. जीवन की अस्थिरता, धन की चंचलता, कर्म-फल आदि आध्यात्मिक विचारों के नित्य चिन्तन-मनन के अभाव से।
7. पूर्वकृत लोभ-मोहनीय नामक कर्म-प्रकृति के उदय से।

लोभ को जीतने के उपाय-

1. धन या भौतिक पदार्थ ही सुख के कारण नहीं हैं। क्या सौ रूपये वालों से लाख रूपये वाले हजार गुने सुखी हैं? सुख आखिर संतोष के विचार जागृत करने पर ही मिल सकता है। इसका गहराई से नित्य प्रति चिन्तन-मनन करते रहना चाहिये।
2. मुझे ज्यादा धन वाले सुखी लगते हैं, पर वस्तुतः यह सही नहीं है, यह मेरे अज्ञान का फल है। वास्तविक सुखी तो विचारों में सन्तोष की मात्रा बढ़ाने से ही हो सकूँगा।
3. समाज में इज्जत या नामबरी भी मात्र पैसे से नहीं हो सकती। सच्ची इज्जत तो क्षमा, परोपकार, सरलता आदि सद्गुणों से ही होती है।
4. हमेशा अपने से धन में नीचे वालों की तरफ देखते रहना चाहिए।
5. इस लोक में भी जब धन के लिए चोरी करने वाले पकड़े जाते हैं, तब जेल की सजा व यातना स्वयं भुगतते हैं। कोई अन्य हिस्सा नहीं बँटाता तो परलोक में नरक, तिर्यञ्च आदि दुर्गतियों में दुःख भोगते समय कौन रक्षा कर सकेगा?
6. अनित्य, अशरण, संसार और एकत्व इन चार भावनाओं का गहराई से, शान्त चित्त से नित्य चिन्तन करना चाहिये।

लोभ को सब गुणों का विनाशक बताया गया है- **लोहो सव्व विणासणो** -दशवै.8/38 अर्थात् अन्य कषाय तो एक-एक सद्गुण का नाश करते हैं किन्तु लोभ तो सभी सद्गुणों को नष्ट कर देता है।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढइ।
दो मास कयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं।। 9/16-17

जैसे-जैसे लाभ होता है, वैसे-वैसे लोभ होता है। लाभ से लोभ बढ़ता है। दो माशा सोने से निष्पन्न होने वाला कार्य, करोड़ों स्वर्ण मुद्राओं से भी पूरा नहीं हो पाता। अतः स्पष्ट है कि तृष्णा कभी पूर्ण नहीं होती।

लोभ सर्वविनाशक है। अतः इससे बचना चाहिए। सन्तोष ही एक ऐसा उपचार है जो लोभ रूपी भयंकर रोग को समाप्त कर सकता है। सन्तोषी व्यक्ति सब प्रकार की बुराइयों से बचा रहता है।

स्तुति विभाग-

श्री वीर स्तुति (वीरत्थुइ)

'पुच्छिंस्सु णं' अथवा 'वीरत्थुइ' के नाम से जैन जगत में प्रसिद्ध यह महावीर स्तुति बड़े ही आदर एवं श्रद्धा के साथ साधकों द्वारा गाई जाती है, स्वाध्याय रूप भी गुनगुनाई जाती है।

प्रस्तुत स्तुति 'सूत्रकृतांग सूत्र' के प्रथम श्रुतस्कंध के छठे अध्ययन से ली गई है। सूत्रकृतांग सूत्र कालिक सूत्र होने से इस स्तुति का स्वाध्याय भी 34 अस्वाध्याय टालकर दिन-रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम प्रहर में ही करना चाहिये।

'वीरस्तुति' में कुल 29 गाथाएँ हैं जिनकी प्रथम व द्वितीय गाथा में जम्बूस्वामी द्वारा भगवान महावीर के बारे में जिज्ञासा रूप प्रश्न किया है, जिज्ञासा का विषय भी इंगित किया है कि मैं भगवान के ज्ञान-दर्शन-शील आदि के बारे में जानना चाहता हूँ।

तीसरी से अट्ठाईसवीं तक 26 गाथाओं में उत्तर में आर्य सुधर्मा स्वामी द्वारा प्रभु की स्तुति विभिन्न रूपकों व उपमाओं से की गई है, उनका ज्ञान-दर्शन व आचार पक्ष प्रस्तुत किया गया है एवं अन्तिम 29वीं गाथा में अरिहन्त प्ररूपित धर्म की श्रद्धा व आराधना से होने वाले फल का निर्देश किया गया है।

मूल- पुच्छिंस्सु णं समणा माहणा य,अगारिणो या परितित्थिया य।
से केइ णेगंतहियं धम्ममाहु, अणेलिसं साहुसमिक्खयाए।।1।।

कठिन शब्दार्थ- पुच्छिंस्सु - पूछा, **समणा** - श्रमण, **माहणा** - ब्राह्मण, **अगारिणो** - गृहस्थ (क्षत्रिय आदि), **परतित्थिया** - पर तीर्थिक, **के** - कौन हैं, **इण** - इस, **एगंतहियं** - एकान्त हितकारी, **अणेलिसं** - अनुपम, **धम्मं** - धर्म को, **आहु** - कहा है, **साहु** - अच्छी तरह से भली-भांति, **समिक्खाए** - सोच विचार कर।।1।।

भावार्थ- आर्य जम्बू स्वामी अपने गुरु एवं भगवान के प्रथम पट्टधर श्री सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं कि अनेक, साधु, ब्राह्मण, गृहस्थ एवं अन्य तीर्थियों ने पूछा है कि वह महापुरुष कौन हैं जिसने समीक्षा करके पूर्ण रूप से जानकर के एकान्त हितकारी और अनुपम धर्म को कहा है, बताया है।

मूल- कहं च णाणं कहं दंसणं से, सीलं कहं नायसुयस्स आसी।
जाणासि णं भिक्खु! जहातहेणं, अहासुयं बूहि जहाणिसंतं।।2।।

कठिन शब्दार्थ- कहं - कैसा, **णाणं** - ज्ञान, **दंसण** - दर्शन, **से** - उन, **सीलं** - शील, **णायसुयस्स** - ज्ञातपुत्र का, **जाणासि** - जानते हो, **जहातहेणं** - यथार्थ रूप से, **अहासुयं** - जैसा सुना है, **बूहि** - बतलाओ, **णिसंतं** - निश्चय किया है।।2।।

भावार्थ- जम्बू स्वामी सुधर्मा स्वामी से पूछते हैं, उन ज्ञानपुत्र भगवान् का ज्ञान कैसा था? दर्शन कैसा था? और शील अर्थात् चारित्र और व्यवहार कैसा था? अहो भगवान्! आप जानते हो अतः आपने जैसा सुना और जैसा निश्चय किया, वह सब मुझे भली प्रकार से बताइए।

मूल– खेयन्ने से कुसले महेसी, अणंतनाणी य अणंतदंसी।
जसंसिणो चक्खुपहे ठियस्स, जाणाहि धम्मं च धिइं च पेहि।।3।।

कठिन शब्दार्थ– खेयण्णए – खेदज्ञ, **से** – वे, **कुसले** – कुशल, **महेसी** – महर्षि, **अणंतणाणी** – अनन्तज्ञानी, **अणंतदंसी** – अनन्तदर्शी, **जसंसिणो** – यशस्वी, **चक्खुपहे ठियस्स** – चक्षु पथ में स्थित, **जाणाहि** – जानो, **धिइं** – धृति (धीरता) को, **पेहि** – देखो।।3।।

भावार्थ– हे जम्बू! भगवान् महावीर खेदज्ञ (सभी प्राणियों के दुःख के ज्ञाता) अथवा क्षेत्रज्ञ (सम्पूर्ण क्षेत्र के ज्ञाता) एवं कुशल (कर्म काटने में निपुण) महर्षि थे। वे अनन्तज्ञानी एवं अनन्तदर्शी थे। वे यशस्वी थे एवं भव्य जीवों के चक्षु पथ में स्थित थे। तुम उनके धर्म और धैर्य को देखो और जानो, विचारो।

मूल– उड्ढं अहेयं तिरियं दिसासु, तसा य जे थावर जे य पाणा।
से णिच्चणिच्चेहि समिक्ख पन्ने, दीवे व धम्मं समियं उदाहु।।4।।

कठिन शब्दार्थ– उड्ढं – ऊर्ध्व, **अहे** – अधो, **तिरियं** – तिर्यक्, **दिसासु** – दिशाओं में, **तसा** – त्रस, **थावर** – स्थावर, **पाणा** – प्राणी, **णिच्चणिच्चेहि** – नित्य और अनित्य दोनों दृष्टियों से, **समिक्ख** – समीक्ष्य/भली-भांति देख कर, **पण्णे** – प्रज्ञाशाली/प्रकर्ष ज्ञाता (केवलज्ञानी), **दीवे व** – दीपक/द्वीप के समान, **समियं** – सम्यक्, **धम्मं** – धर्म का, **उदाहु** – कथन किया है।।4।।

भावार्थ– ऊँची, नीची, तिरछी दिशाओं में जो भी त्रस एवं स्थावर प्राणी हैं भगवान महावीर ने अपनी सम्यक् प्रज्ञा (केवल ज्ञान) में उनके नित्यत्व और अनित्यत्व को जानकर उनके आधार के लिये दीपक अथवा द्वीप रूप धर्म का सम्यक् रूप से कथन किया है।

मूल– से सव्वदंसी अभिभूय नाणी, णिरामगंधे धिइमं ठियप्पा।
अणुत्तरे सव्वजगंसि विज्जं, गंथा अतीते अभए अणाऊ।।5।।

कठिन शब्दार्थ– सव्वदंसी – सर्वदर्शी, **अभिभूयणाणी** – अभिभूतज्ञानी/केवलज्ञानी, **णिरामगंधे** – विशुद्ध चारित्र का पालन करने वाले, **धिइमं** – धृतिमान्, **ठियप्पा** – स्थितात्मा, आत्म-स्वरूप में स्थित, **अणुत्तरे** – अनुत्तर, **विज्जं** – विद्वान्, **सव्वजगंसि** – सम्पूर्ण जगत् में, **गंथा अतीते** – बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थियों से रहित, **अभए** – अभय, **अणाऊ** – अनायु/आयु रहित।।5।।

भावार्थ– वे प्रभु महावीर सर्वदर्शी एवं अभिभूत ज्ञानी (केवलज्ञानी) थे। वे शुद्ध चारित्र का पालन करने में धैर्यवान थे और आत्मस्वरूप में स्थित आत्मा थे। सम्पूर्ण जगत में श्रेष्ठ विद्वान थे। बाह्य आभ्यन्तर परिग्रह रूप ग्रन्थियों से रहित एवं निर्भय तथा आयु रहित अर्थात् जन्म-मरण से रहित थे।

मूल– से भूइपण्णे अणिएअचारी, ओहंतरे धीरे अणंतचक्खू।
अणुत्तरं तप्पइ सूरिए वा, वइरोयणिंदे व तमं पगासे।।6।।

कठिन शब्दार्थ– भूइपण्णे – भूतिप्रज्ञ-अनन्तज्ञानी, **अणिए अचारी** – अनियताचारी/इच्छानुसार विचरण करने वाले अथवा अनिकेतचारी अर्थात् गृहत्याग कर विचरण करने वाले, **ओहंतरे** – संसार सागर के पारगामी, **धीरे** – धैर्यशाली, **अणंतचक्खू** – अनन्त चक्षु वाले - केवलदर्शी, **अणुत्तरं** – सबसे अधिक,

तप्पइ - तपता है, **सूरिए वा** - सूर्य के समान, **वइरोयणिंदे** - वैरोचनेन्द्र- प्रज्ज्वलित अग्नि, **तमं** - अंधकार को, **पगासे** - प्रकाशित करने वाले।।6।।

भावार्थ- वे प्रभु महावीर भूतिप्रज्ञ एवं अनियत आचारी थे अर्थात् स्व-विवेक से विचरण करने वाले थे, संसार सागर से तिरे हुए तथा धैर्यशाली एवं केवलदर्शी थे। साथ ही जैसे सूर्य सबसे अधिक तपता है वैसे प्रकाशमान तथा वैरोचनेन्द्र - तेज जाज्ज्वल्यमान अग्नि के समान अज्ञान अंधकार का नाश करने वाले एवं वस्तु स्वरूप को प्रकाशित करने वाले थे।

मूल- अणुत्तरं धम्ममिणं जिणाणं, णेया मुणी कासव आसुपन्ने।
इन्दे व देवाण महाणुभावे, सहस्स णेया दिवि णं विसिट्ठे।।7।।

कठिन शब्दार्थ- अणुत्तरं - उत्कृष्ट, **धम्मं** - धर्म के, **इणं** - इस, **जिणाणं** - जिनेश्वरों के, **णेया** - नेता, **मुणी** - मुनि, **कासव** - काश्यपगोत्री, **आसुपण्णे** - आशुप्रज्ञ - शीघ्र बुद्धि वाले, **इंदेव** - इन्द्र के समान, **देवाण** - देवों का, **सहस्स** - सहस्र/हजार, **दिवि** - स्वर्गलोक में, **विसिट्ठे** - विशिष्ट, **महाणुभावे** - महानुभाव/महाप्रभावशाली।।7।।

भावार्थ- आशुप्रज्ञ (अनन्त/केवलज्ञानी) काश्यप गोत्रीय मुनि श्री भगवान महावीर स्वामी महाप्रभावशाली (महानुभाव) एवं आदि ऋषभ से पार्श्व तक संचालित इस उत्तम धर्म के नेता हैं, जैसे देवलोक में इन्द्र सभी देवताओं से श्रेष्ठ हैं, वैसे ही भगवान सर्वश्रेष्ठ हैं।

मूल- से पन्नया अक्खयसायरे वा, महोदही वावि अणंतपारे।
अणाइले वा अकसाइ मुक्के, सक्के व देवाहिवई जुईमं।।8।।

कठिन शब्दार्थ- पण्णया - प्रज्ञा से, **अक्खय** - अक्षय, **सायरे** - सागर/समुद्र, **महोदही** - महोदधि-स्वयंभूरमण समुद्र, **अणंतपारे** - अपार/पार रहित, **अणाइले** - निर्मल, **अकसाई** - अकषायी/कषायों से रहित, **मुक्के (भिक्खू)** - मुक्त, **सक्के** - शक्रेन्द्र, **देवाहिवई** - देवाधिपति, **जुइमं** - ज्योतिमान्।।8।।

भावार्थ- वे भगवान् महावीर प्रज्ञा में अन्त रहित पार वाले स्वयंभूरमण महासागर के समान अक्षय ज्ञान सागर हैं एवं कर्म से रहित, कषाय रहित तथा ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्म से मुक्त हैं। साथ ही देवताओं के इन्द्र शकेन्द्र के समान ज्योतिमान अर्थात् तेजस्वी हैं।

मूल- से वीरिएणं पडिपुन्नवीरिए, सुदंसणे वा णगसव्वसेट्ठे।
सुरालए वासि मुदागरे से, विरायए णेगगुणोववेए।।9।।

कठिन शब्दार्थ- वीरिएणं - वीर्य से, **पडिपुण्णवीरिए** - पूर्ण (सर्वश्रेष्ठ) वीर्य वाले, **सुदंसणे** - सुदर्शन (मेरु), **णगसव्व** - सभी पर्वतों में, **सेट्ठे** - श्रेष्ठ, **सुरालए** - स्वर्ग, **वासि** - निवास करने वाले को, **मुदागरे** - हर्ष उत्पन्न करने वाला, **विरायए** - विराजमान है, **णेगगुणोववेए** - अनेक गुणों से युक्त।।9।।

भावार्थ- वे भगवान् महावीर वीर्यान्तराय कर्म के क्षय हो जाने से प्रतिपूर्ण वीर्य वाले हैं, जैसे समस्त पर्वतों में सुदर्शन मेरु श्रेष्ठ है उसी प्रकार भगवान् महावीर वीर्य आदि आत्मगुणों में सर्वश्रेष्ठ हैं।

जैसे देवलोक अनेक प्रशस्त वर्ण-गंधादि गुणों से अपने निवासी देव-देवियों के लिये हर्षजनक है वैसे ही भगवान महावीर अनेक गुण युक्त होकर सभी प्राणियों के लिये हर्षजनक के रूप में विराजमान हैं।

मूल– सयं सहस्साण उ जोयणाणं, तिकंडगे पंडगवेजयंते।
से जोयणे णवणवइ सहस्से, उद्धुस्सितो हेट्ठ सहस्समेगं।।10।।

कठिन शब्दार्थ– सयं सहस्साण – सौ हजार अर्थात् एक लाख, **जोयणाणं** – योजन, **तिकंडगे** – तीन कांडों (भागों) वाला, **पंडग वेजयंते** – पंडक, वन रूपी पताका से युक्त, **णवणवइ** – निन्नानवें, **सहस्से** – हजार, **उद्धुस्सितो** – ऊपर स्थित, **हेट्ठ** – नीचे, **सहस्समेगं** – हजार योजन।।10।।

भावार्थ– सुमेरू एक लाख (शत सहस्र/सौ हजार) योजन ऊँचा है, उसके तीन काण्ड या विभाग हैं और सबसे ऊपर पंडक वन है जो पताका के रूप में शोभायमान है। वह सुमेरु पर्वत 99 हजार योजन समतल पृथ्वी से ऊँचा तथा 1 हजार योजन जमीन के अन्दर नींव रूप है।

मूल– पुट्ठे णभे चिट्ठइ भूमिवट्टिए, जं सूरिया अणुपरिवट्टयंति।
से हेमवन्ने बहुनंदणे य, जंसी रतिं वेदयंती महिंदा।।11।।

कठिन शब्दार्थ– पुट्ठे – स्पर्श किया हुआ, **णभे** – आकाश, **भूमिवट्ठिए** – पृथ्वी पर, **चिट्ठइ** – स्थित है, **सूरिया** – सूर्य, **अणुपरिवट्टयंति** – परिक्रमा करते हैं, **हेमवण्णे** – स्वर्ण वर्ण वाला, **बहुणंदणे** – बहुत नंदन वनों वाला, बहुतों को आनन्द देने वाला, **जंसी** – जहाँ, **रतिं** – आनन्द का, **वेदयंती** – अनुभव करते हैं, **महिंदा** – महान् इन्द्र।

भावार्थ– वह सुमेरु पर्वत भूमि के अन्दर से आकाश तक ऊपर स्थित होने से तीनों लोकों को स्पर्श करता हुआ स्थित है। सूर्य आदि ज्योतिषी विमान इसकी परिक्रमा करते रहते हैं। वह सुमेरु स्वर्ण वर्ण वाला (सोने के रंग वाला) एवं नन्दन आदि अनेक वनों वाला है जहाँ देवों के महान इन्द्र भी रति (आनन्द) का अनुभव करते हैं।

मूल– से पव्वए सद्दमहप्पगासे, विरायती (ति) कंचणमट्ठवन्ने।
अणुत्तरे गिरिसु य पव्वदुग्गे, गिरीवरे से जलिए व भोमे।।12।।

कठिन शब्दार्थ– पव्वए – पर्वत, **सद्दमहप्पगासे** – अनेक नामों से प्रसिद्ध, **कंचणमट्ठवण्णे** – घिसे हुए सोने के वर्ण वाला, **विरायइ** – सुशोभित है, **गिरिसु** – पर्वतों में, **पव्वदुग्गे** – पर्वत मेखलाओं से दुर्गम, **गिरिवरे** – पर्वत श्रेष्ठ, **भोमे व जलिए** – मणि, औषधियों से प्रकाशित।।12।।

भावार्थ– वह सुमेरु पर्वत अनेक शब्दों (नामों) से प्रकाशित (प्रसिद्ध) है, घिसे हुए सोने के रंग समान चमक वाला है। वह अनुत्तर श्रेष्ठ पर्वत अनेक मेखला आदि होने से दुर्गम है तथा अनेक प्रकार की मणियों व औषधियों से प्रकाशित है।

मूल– महीइ मज्झम्मि ठिए णगिंदे, पन्नायए सूरिय सुद्धलेसे।
एवं सिरीए उ स भूरिवन्ने, मणोरमे जोयइ अच्चिमाली।।13।।

कठिन शब्दार्थ– महीइ – पृथ्वी के, **मज्झंमि** – मध्य में, **ठिए** – स्थित, **णगिंदे** – नगेन्द्र-पर्वतराज सुमेरु, **पण्णायए** – प्रतीत होता है, **सूरिय सुद्धलेसे** – सूर्य के समान शुद्ध लेश्या कांति वाले, **सिरिए** – शोभा से, **भूरिवण्णे** – अनेक वर्ण वाले, **मणोरमे** – मनोरम, **अच्चिमाली** – सूर्य, **जोयइ** – प्रकाशित हो रहा है।।13।।

भावार्थ– वह नगेन्द्र पर्वतराज पृथ्वी के मध्य भाग में स्थित है एवं सूर्य के समान तेज कांति युक्त प्रतीत होता है। इस प्रकार वह अपनी शोभा से अनेक वर्णों वाला एवं मनोहर है तथा सूर्य की ही तरह दसों दिशाओं को ज्योतित (प्रकाशित) करता है।

मूल– सुदंसणस्सेव जसो गिरिस्स, पवुच्चइ महतो पव्वयस्स।
एतोवमे समणे नायपुत्ते, जाई-जसो-दंसण-नाणसीले।।14।।

कठिन शब्दार्थ– सुदंसणस्स – सुदर्शन का, **इव** – जिस तरह, **जसो** – यश, **पवुच्चइ** – कहा जाता है, **महतो** – महान्, **पव्वयस्स** – पर्वत का, **समणे णायपुत्ते** – ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान् महावीर स्वामी, **एतोवमे** – इसके समान उपमा, **जाइ** – जाति, **दंसणणाण सीले** – दर्शन, ज्ञान, शील।

भावार्थ– उस महान् पर्वत सुदर्शन का यश पूर्वोक्त प्रकार से कहा जाता है, भगवान् महावीर भी उसी प्रकार जाति, यश, दर्शन, ज्ञान एवं शील में अनेक गुणों से युक्त सर्वश्रेष्ठ हैं।

मूल– गिरी (रि) वरे वा निसहाऽऽययाणं, रूयए व सेट्ठे वलयायताणं।
तओवमे से जगभूइपन्ने, मुणीण मज्झे तमुदाहु पन्ने।।15।।

कठिन शब्दार्थ– आययाणं – आयत-लम्बे पर्वतों में, **णिसह** – निषध, **रुयए** – रुचक, **वलयायताणं** – वलयाकार-गोल पर्वतों में, **तओवमे** – उसके समान उपमा, **जग भूइपण्णे** – जगत् में भूतिप्रज्ञ, **मुणीण** – मुनियों के, **मज्झे** – मध्य, **तमुदाहु** – उसे कहा है, **पन्ने** – प्राज्ञ बुद्धिमान्।।15।।

भावार्थ– जैसे आयताकार (लम्बाकार) पर्वतों में निषध एवं वलयाकार पर्वतों में रुचक पर्वत श्रेष्ठ है। उसी प्रकार सभी मुनियों में जगत् के ज्ञानी (जगत् भूतिप्रज्ञ) महावीर श्रेष्ठ हैं ऐसा प्रज्ञावान पुरुषों ने कहा है।

मूल– अणुत्तरं धम्ममुईरइत्ता, अणुत्तरं झाणवरं झियाइ।
सुसुक्कसुक्कं अपगंडसुक्कं, संखिंदुएगंत वदातसुक्कं।।16।।

कठिन शब्दार्थ– धम्ममुईरइत्ता – धर्म का उपदेश देकर, **अणुत्तरं** – सर्वोत्तम, **झाणवरं** – प्रधान ध्यान, **झियाइ** – ध्याते थे, **सुसुक्कसुक्कं** – अत्यन्त शुक्ल वस्तु के समान शुक्ल, **अपंगडसुक्कं** – जल के फेन के समान शुक्ल, **संखिंदुएगंतवदात सुक्कं** – शंख तथा चन्द्रमा के समान एकान्त शुक्ल।।16।।

भावार्थ– भगवान् महावीर स्वामी, सर्वोत्तम धर्म बताकर, सवोत्तम ध्यान ध्याते थे। उनका ध्यान अत्यन्त शुक्ल वस्तु के समान, जल के फेन के समान दोष रहित शुक्ल था तथा शंख और चन्द्रमा के समान शुद्ध था।

मूल– अणुत्तरग्गं परमं महेसी, असेसकम्मं स विसोहइत्ता।
सिद्धिं गइं साइमणंत पत्ते, नाणेण सीलेण य दंसणेण।।17।।

कठिन शब्दार्थ– असेसकम्मं – समस्त कर्मों को, **विसोहइत्ता** – विशोधन करके, **सिद्धिं** – सिद्धि को, **साइमणंत** – सादि अनन्त जिसकी आदि है परन्तु अन्त नहीं, **पत्ते** – प्राप्त हुए, **णाणेण** – ज्ञान से, **दंसणेण** – दर्शन से, **सीलेण** – शील से।।17।।

भावार्थ– महर्षि भगवान महावीर स्वामी ज्ञान, दर्शन और चारित्र के प्रभाव से ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मों को क्षय करके सर्वोत्तम उस सिद्धि को प्राप्त हुए, जिसकी आदि है परन्तु अन्त नहीं है।

मूल– रुक्खेसु णाए जह सामली वा, जस्सिं रइं वेदयंती सुवन्ना।
वणेसु वा नंदणमाहु सेट्ठं, नाणेण सीलेण य भूइपन्ने।।18।।

कठिन शब्दार्थ– रक्खेसु – वृक्षों में, **णाए** – ज्ञात, प्रसिद्ध, **सामली** – शाल्मली, **जस्सिं (जंसि)** – जिस पर, **रइं** – आनन्द का, **सुवण्णा** – सुवर्ण कुमार, **वणेसु** – वनो में, **णंदणं** – नंदनवन को, **आहु** – कहा है, **सेट्ठं** – श्रेष्ठ, **भूइपण्णे** – भूतिप्रज्ञ-उत्कृष्ट ज्ञान दर्शन वाले।।18।।

भावार्थ– जैसे वृक्षों में सुवर्ण कुमार देवताओं का आनन्ददायक क्रीडास्थान शाल्मली वृक्ष श्रेष्ठ है तथा वनों में नन्दनवन श्रेष्ठ है, इसी तरह ज्ञान और चारित्र में भगवान् महावीर स्वामी सबसे श्रेष्ठ हैं।

मूल– थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदो व ताराण महाणुभावे।
गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीणं अपडिन्नमाहु।।19।।

कठिन शब्दार्थ– थणियं – स्तनित - मेघ गर्जन, **सद्दाण** – शब्दों में, **अणुत्तरे** – प्रधान, **चंदो** – चन्द्रमा, **ताराण** – ताराओं में, **महाणुभावे** – महानुभाव, **गंधेसु** – गंधों में, **चंदणं** – चंदन, **आहु सेट्ठं** – श्रेष्ठ कहा है, **एवं** – इसी प्रकार, **मुणीणं** – मुनियों में, **अपडिण्णं** – अप्रतिज्ञ-अनासक्त।।19।।

भावार्थ– जैसे सब शब्दों में मेघ का गर्जन प्रधान है और सब ताराओं में चन्द्रमा प्रधान है तथा सब गन्धवालों में जैसे चन्दन प्रधान है, इसी तरह सब मुनियों में अप्रतिज्ञ-अनासक्त (इहलोक एवं परलोक सम्बन्धी सभी कामनाओं से रहित) भगवान् महावीर स्वामी प्रधान हैं।

मूल– जहा सयंभू उदहीण सेट्ठे, नागेसु वा धरणिंदमाहु सेट्ठे।
खोओदए वा रसवेजयंते, तवोवहाणे मुणि वेजयंते।।20।।

कठिन शब्दार्थ– उदहीण – समुद्रों में, **सयंभू** – स्वयंभू, **णागेसु** – नागकुमार देवों में, **धरणिंद** – धरणेन्द्र, **खोओदए** – इक्षु रसोदक, **वेजयंते** – वैजयंत प्रधान श्रेष्ठ, **तवोवहाणे** – तप में।।20।।

भावार्थ– जैसे सब समुद्रों में स्वयम्भूरमण समुद्र प्रधान है तथा नागकुमार देवों में धरणेन्द्र सर्वोत्तम हैं एवं जैसे सब रसों में इक्षुरसोदक समुद्र श्रेष्ठ है, इसी तरह सब तपस्वियों में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी श्रेष्ठ हैं।

मूल– हत्थीसु एरावणमाहु णाएं, सीहो मियाणं सलिलाण गंगा।
पक्खीसु वा गरूले वेणुदेवे, निव्वाणवादीणिह णायपुत्ते।।21।।

कठिन शब्दार्थ– हत्थीसु – हाथियों में, **एरावणं** – ऐरावत, **सीहो** – सिंह, **मियाणं** – मृगों में, **सलिलाणं** – नदियों में, **गंगा** – गंगा नदी, **पक्खीसु** – पक्षियों में, **वेणुदेवे गरुले** – वेणुदेव गरुड़, **णिव्वाणवादीण** – निर्वाण वादियों में, **इह** – यहाँ।।21।।

भावार्थ– हाथियों में ऐरावत, मृगों में सिंह, नदियों में गंगा और पक्षियों में जैसे वेणुदेव गरुड़ श्रेष्ठ हैं, इसी तरह मोक्षवादियों में भगवान् महावीर स्वामी श्रेष्ठ हैं।

मूल– जोहेसु णाए जह वीससेणे, पुप्फेसु वा जह अरविंदमाहु।
खत्तीणसेट्ठे जह दंतवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे।।22।।

कठिन शब्दार्थ– जोहेसु – योद्धाओं में, **वीससेणे** – विश्वसेन नामक चक्रवर्ती, **पुप्फेस्सु** – फूलों में, **अरविन्द** – अरविन्द (कमल), **खत्तीण** – क्षत्रियों में, **दंतवक्के** – दान्तवाक्य नामक चक्रवर्ती, **इसीण** – ऋषियों में।।22।।

भावार्थ– जैसे योद्धाओं में विश्वसेन नामक चक्रवर्ती प्रधान हैं तथा फूलों में जैसे अरविन्द (कमल) प्रधान हैं एवं क्षत्रियों में जैसे दान्तवाक्य नामक चक्रवर्ती प्रधान हैं, इसी तरह ऋषियों में वर्द्धमान स्वामी प्रधान हैं।

मूल– दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं, सच्चेसु वा अणवज्जं वयंति।
तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं, लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते।।23।।

कठिन शब्दार्थ– दाणाण – दानों में, **अभयप्पयाणं** – अभयदान, **सच्चेसु** – सत्य वचन में, **अणवज्जं** – अनवद्य वचन, **तवेसु** – तपों में, **बंभचेरं** – ब्रह्मचर्य, **उत्तमं** – उत्तम श्रेष्ठ, **लोगत्तुमे** – लोकोत्तम-लोक में प्रधान।।23।।

भावार्थ– दानों में अभयदान श्रेष्ठ है, सत्य में वह सत्य (अनवद्य वचन - पाप रहित वचन) श्रेष्ठ है जिससे किसी को पीड़ा न हो तथा तप में ब्रह्मचर्य उत्तम है इसी तरह लोक में ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर स्वामी उत्तम हैं।

मूल– ठिईण सेट्ठा लवसत्तमा वा, सभा सुहम्मा व सभाण सेट्ठा।
निव्वाणसेट्ठा जह सव्वधम्मा, ण णायपुत्ता परमत्थि णाणी।।24।।

कठिन शब्दार्थ– ठिईण – स्थिति वालों में, **लवसत्तमा** – लव सप्तम् देव, **सभाण** – सभाओं में, **सुहम्मा सभा** – सुधर्मा सभा, **सव्वधम्मा** – सभी धर्मों में, **णिव्वाण सेट्ठा** – निर्वाण/मोक्ष श्रेष्ठ, **परमत्थि** – परम श्रेष्ठ है।।24।।

भावार्थ– जैसे सब स्थिति वालों में पाँच अनुत्तर विमानवासी एक भवावतारी देवता श्रेष्ठ हैं तथा सब सभाओं में सुधर्मा सभा श्रेष्ठ है एवं सब धर्मों में जैसे निर्वाण (मोक्ष) श्रेष्ठ है, इसी तरह सब ज्ञानियों में भगवान् महावीर स्वामी श्रेष्ठ हैं।

मूल– पुढोवमे धुणइ विगयगेही, न सण्णिहिं कुव्वइ आसुपन्ने।
तरिउं समुद्दं व महाभवोघं, अभयंकरे वीर अणंतचक्खू।।25।।

कठिन शब्दार्थ– पुढोवमे - पृथ्वी की उपमा वाले, **धुणइ** - कर्म मल को दूर करता है, **विगयगेही** - विगतगृद्धि, अनासक्त, आसक्ति रहित, **सण्णिहिं** - सन्निधि-संग्रह-संचय, **तरिउं** - पार करने के लिए, **समुद्दं** - समुद्र को, **महाभवोघं** - महाभवौघ-महान् संसार को, **अभयंकरे** - अभयंकर, **अणंतचक्खू** - अनन्त चक्षु वाले-अनन्त ज्ञानी।।25।।

भावार्थ– भगवान् महावीर पृथ्वी की तरह समस्त प्राणियों के आधार हैं एवं आठ प्रकार के कर्मों को दूर करने वाले और बाह्याभ्यंतर सभी प्रकार की आसक्ति से रहित हैं। प्रभु सभी प्रकार की सन्निधि से रहित एवं आशुप्रज्ञ-केवलज्ञानी हैं। भगवान् महा समुद्र रूपी अनन्त संसार को पार करके मोक्ष को प्राप्त करते हैं। भगवान् प्राणियों को अभय करने वाले तथा अनन्त चक्षु अर्थात् अनन्त ज्ञानी हैं।

मूल– कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थदोसा।
एआणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वइ पावं ण कारवेइ।।26।।

कठिन शब्दार्थ– कोहं - क्रोध, **माणं** - मान, **तहा** - तथा, **मायं** - माया, **लोभं** - लोभ, **चउत्थं** - चौथा, **अज्झत्थदोसा** - अध्यात्म दोषों का, **वंता** - वमन करने वाला, **अरहा** - अर्हंत्, **कुव्वइ** - करते, **कारवेइ** - दूसरों से करवाते।।26।।

भावार्थ– भगवान् महावीर स्वामी अरिहन्त महर्षि हैं वे क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों को जीते हुए अर्थात् अध्यात्म दोषों से रहित हैं तथा न तो स्वयं पाप करते हैं और न दूसरों से कराते हैं और पाप करने वालों का अनुमोदन भी नहीं करते हैं।

मूल– किरियाकिरियं वेणइयाणुवायं, अण्णाणियाणं पडियच्च ठाणं।
से सव्ववायं इइ वेयइत्ता, उवट्ठिए संजमदीहरायं।।27।।

कठिन शब्दार्थ– किरियाकिरियं - क्रियावादी-अक्रियावादी, **वेणइयाणुवायं** - विनयवादी के कथन को, **अण्णाणियाणं** - अज्ञानवादी के, **ठाणं** - स्थान को-पक्ष को, **पडियच्च** - जानकर, **सव्ववायं** - सभी वादियों के मत को, **वेयइत्ता** - जानकर, **उवट्ठिए** - स्थित, **संजमदीहरायं** - यावज्जीवन के लिये संयम में।।27।।

भावार्थ– क्रियावादी, अक्रियावादी, विनयवादी तथा अज्ञानवादी इन सभी मतवादियों के मतों को जानकर भगवान् यावज्जीवन संयम में स्थित रहे थे।

मूल– से वारिया इत्थि सराइभत्तं, उवहाणवं दुक्ख खयट्ठयाए।
लोगं विदित्ता आरं परं च, सव्वं पभू वारिया सव्ववारं।।28।।

कठिन शब्दार्थ– वारिया - वर्जन करके, **इत्थि** - स्त्री, **सराइभत्तं** - रात्रि भोजन सहित, **उवहाणवं** - उपधानवान्-तपस्वी, **दुक्खखयट्ठयाए** - दुःखों का अन्त करने के लिए, **लोगं** - लोक को, **आरं** - इस, **परं** - पर, **विदित्ता** - जानकर, **सव्वं वारियं** - सभी पापों को, **सव्ववारं** - सर्वथा प्रकार से त्याग कर दिया।।28।।

भावार्थ– उत्कृष्ट तपस्वी भगवान् महावीर स्वामी ने दुःख रूप अष्टविध कर्मों का क्षय करने के लिए स्त्री भोग और रात्रि भोजन छोड़ दिया था तथा सदैव तप में प्रवृत्त रहते हुए इस लोक तथा परलोक के स्वरूप को जानकर सब प्रकार के पापों को सर्वथा त्याग दिया था।

मूल– सोच्चा य धम्मं अरिहंतभासियं, समाहियं अट्ठपओवसुद्धं।
तं सद्दहणा य जणा अणाऊ,इंदे व देवाहिव आगमिस्संति।।29।।

कठिन शब्दार्थ– अरिहंत भासियं – अरिहन्त भाषित, **धम्मं** – धर्म को, **सोच्चा** – सुनकर, **समाहियं** – समाहित-युक्तियुक्त, **अट्ठपओवसुद्धं** – अर्थ और पदों से शुद्ध, **सद्दहाणा** – श्रद्धा करने वाले, **जणा** – जीव मनुष्य, **अणाऊ** – अनायुष-मोक्ष, **देवाहिव** – देवों के स्वामी, **आगमिस्संति** – होते हैं।

भावार्थ– अरिहंत देव द्वारा कहे हुए युक्ति संगत तथा शुद्ध अर्थ और पद वाले इस धर्म को सुनकर जो जीव इसमें श्रद्धा करते हैं वे मोक्ष को प्राप्त करते हैं अथवा देवताओं के अधिपति इन्द्र बनते हैं।

श्री सुधर्मास्वामी तीर्थंकर भगवान् के गुणों को बताकर अपने शिष्यों से कहते हैं कि यह श्रुत और चारित्र रूप धर्म तीर्थंकर भगवन्तों द्वारा कहा हुआ है। यह शुद्ध है, युक्ति संगत है तथा अर्थ (अभिधेय पदार्थ) और पदों (वाचक शब्दों) से दोष रहित है। ऐसे जिनभाषित धर्म में जो जीव श्रद्धा रखते हैं, वे सिद्ध गति को प्राप्त होते हैं और यदि कुछ कर्म शेष रह जाय तो इन्द्रादि देवाधिपति होकर आगामी भवों में मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

त्तिबेमि–इति ब्रवीमि - श्री सुधर्मा स्वामी अपने शिष्य श्री जम्बूस्वामी से कहते हैं कि हे आयुष्मान् जम्बू! जैसा मैंने श्रमण भगवान् महावीर से सुना है वैसा ही मैं तुम्हें कहता हूँ।

।।वीर-स्तुति समाप्त।।

सामान्य विभाग-

आराधक-विराधक की विशेषताएँ

आराधना का स्वरूप

सम्यग् ज्ञानादि की निरतिचार रूप से अनुपालना करना आराधना है। आराधना के तीन प्रकार हैं- ज्ञानाराधना, दर्शनाराधना और चारित्राराधना। पाँच प्रकार के ज्ञान या ज्ञान के आधार श्रुत-शास्त्रादि की काल, विनय, बहुमान आदि आठ ज्ञानाचार सहित निर्दोष रीति से पालना करना 'ज्ञानाराधना' है। शंका, कांक्षा आदि अतिचारों को न लगाते हुए निःशंकित निष्कांक्षित आदि आठ दर्शनाचारों का शुद्धतापूर्वक पालन करते हुए दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व की आराधना करना 'दर्शनाराधना' है। सामायिक आदि चारित्रों का एवं समिति-गुप्ति, व्रत-महाव्रतादि रूप चारित्र का निरतिचार, विशुद्ध पालन करना 'चारित्राराधना' है।

आराधनाओं के अर्थ एवं फल

उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य ज्ञान, दर्शन, चारित्र आराधनाओं के मात्रापरक अर्थ भी प्रचलित हैं, किन्तु उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य परिणाम रूप अर्थ अधिक उपयुक्त होने से यहाँ अर्थ उसी रूप में दिये जा रहे हैं। जिन्हें संक्षेप में इस प्रकार समझे जाने चाहिए-

उत्कृष्ट आराधना-

	नाम	अर्थ	फल
1.	ज्ञानाराधना	मति आदि 4 ज्ञानों में उत्कृष्ट खप (पुरुषार्थ)	केवल ज्ञान व केवल दर्शन
2.	दर्शनाराधना	उपशम, क्षयोपशमादि में उत्कृष्ट खप (पुरुषार्थ)	क्षायिक सम्यक्त्व
3.	चारित्राराधना	सामायिकादि 5 चारित्रों में उत्कृष्ट खप (पुरुषार्थ)	क्षीण वीतरागता

मध्यम आराधना-

1.	ज्ञानाराधना	मति आदि 4 ज्ञानों में मध्यम खप (पुरुषार्थ)	मति, श्रुत, अवधि व मनःपर्याय ज्ञान
2.	दर्शनाराधना	उपशम, क्षयोपशमादि में मध्यम खप (पुरुषार्थ)	क्षयोपशम व उपशम सम्यक्त्व
3.	चारित्राराधना	सामायिकादि 5 चारित्रों में मध्यम खप (पुरुषार्थ)	सामायिकादि 5 चारित्र

जघन्य आराधना-

1.	ज्ञानाराधना	मति आदि 3 ज्ञानों में जघन्य खप (पुरुषार्थ)	मति, श्रुत व अवधि ज्ञान
2.	दर्शनाराधना	उपशम, क्षयोपशमादि में जघन्य खप (पुरुषार्थ)	उपशम व क्षयोपशम सम्यक्त्व

3.	चारित्राराधना	सामायिक, छेदोपस्थापनीय में जघन्य खप (पुरुषार्थ)	सामायिक व छेदो-पस्थापनीय चारित्र

पारस्परिक सम्बन्ध

जिसमें उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसमें उत्कृष्ट अथवा मध्यम दर्शनाराधना होती है, किन्तु जघन्य दर्शनाराधना नहीं होती, क्योंकि वैसा ही स्वभाव है। उत्कृष्ट दर्शन आराधना में ज्ञान की तीनों प्रकार की आराधना संभव है, अतः पूर्वोक्त तीनों प्रकार की ज्ञानाराधना भजना से होती है।

जिसमें उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है, उसमें चारित्राराधना उत्कृष्ट या मध्यम होती है। जघन्य चारित्राराधना के परिणाम सम्भव न होने से जघन्य चारित्राराधना नहीं होती है। जिसमें उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है, उसमें तीनों प्रकार की चारित्राराधना भजना से होती है। क्योंकि उत्कृष्ट दर्शनाराधक में चारित्र के प्रति तीनों प्रकार का प्रयत्न संभव है। जहाँ उत्कृष्ट चारित्राराधना होती है, वहाँ उत्कृष्ट दर्शनाराधना अवश्य होती है, क्योंकि उत्कृष्ट चारित्र उत्कृष्ट दर्शन का अनुगामी होता है।

मनःपर्याय ज्ञान व परिहार विशुद्धि आदि तीन चारित्रों में ज्ञान व चारित्र की उत्कृष्ट व मध्यम आराधना हो सकती है, जघन्य आराधना के परिणाम नहीं होने से जघन्य नहीं हो सकती। उत्कृष्ट आदि आराधनाओं में ज्ञानादि की निश्चित् मात्रा नहीं समझना। उत्कृष्ट, मध्यम व जघन्य खप (पुरुषार्थ) समझना चाहिये।

आराधक का अर्थ

पूर्वोक्त तीनों प्रकार की आराधनाओं में दर्शन आराधना प्रमुख व प्राथमिक है। क्योंकि दर्शन आराधना होने पर ही निश्चय में ज्ञान व चारित्र की आराधना संभव हो पाती है। आराधक का अर्थ ही श्रुत परम्परा से ऐसा सुनने में आता है कि जिसका सम्यक्त्व अवस्था में अगले भव का आयुष्य बन्ध हुआ हो, उसे ही आराधक मानना चाहिये। सम्यक्त्व आदि मृत्यु के समय होने पर उसका आराधक होना आवश्यक नही है। आयुष्य बन्ध के समय होने पर ही उसे आराधक कहा जा सकता है। क्योंकि आराधक होने पर वह जीव अधिकतम 15 भव करता है और वे 15 भव भी सात वैमानिक देव-सम्बन्धी तथा आठ मनुष्य-सम्बन्धी होते हैं।

1. भगवती सूत्र शतक 1 उद्देशक 2 में तथा औपपातिक सूत्र में आराधक संयमी (साधु) तथा संयमासंयमी (श्रावक) की गति जघन्य पहला देवलोक बतलायी है।
2. तीसरे कर्मग्रन्थ में स्पष्ट वर्णन है कि सम्यग्दृष्टि तिर्यंच व मनुष्य, वैमानिक का ही आयुष्य बन्ध करता है तथा सम्यग्दृष्टि नरक व देवता, मनुष्यायु का ही बन्ध करता है।
3. भगवती सूत्र शतक 26 से 30 तक बन्धी शतक व समवशरण में स्पष्ट वर्णन है कि क्रियावादी (सम्यग्दृष्टि) मनुष्य वैमानिक का आयुष्य बाँधता है।

इन सब प्रमाणों के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि सम्यक्त्व अवस्था में सात बोल (नरक, तिर्यंच, भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, स्त्रीवेद और नपुंसक वेद) का बन्ध नहीं होता। ऊपर भगवती श.1 उद्दे.2 के वर्णन के अनुसार आराधक साधु और आराधक श्रावक की तरह आराधक सम्यक्त्वी की गति मनुष्य की अपेक्षा केवल वैमानिक देवलोक की ही होती है। पाँचवाँ गुणस्थान मृत्यु पर्यन्त रहने पर भी यदि जीव आराधक नहीं बनता है तो वह काल करके सीधा पहले गुणस्थान में भी जा सकता है। गुणस्थानों के स्वरूप-विवेचन से ज्ञात होता है कि छठे गुणस्थान में आराधक अवस्था में काल करने वाले की गति 30 वैमानिक के पर्याप्त-अपर्याप्त

की (पाँच अनुत्तर विमान छोड़कर) है। सातवें गुणस्थान में काल करने वाले की गति 35 वैमानिक देवों के पर्याप्त-अपर्याप्त की तथा आठवें से ग्यारहवें गुणस्थान में काल करने वालों की गति पाँच अनुत्तर विमान के पर्याप्त-अपर्याप्त की ही होती है।

भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 6 में वर्णन है कि निर्ग्रन्थ 11वें गुणस्थान में काल करके 33 सागर की स्थिति वाला एक भवावतारी वैमानिक देव बनता है। भगवती सूत्र शतक 25 उद्देशक 7 में सूक्ष्म सम्पराय नामक 10वें गुणस्थान में काल करने वाले की तथा विशेषावश्यकभाष्य में 8वें, 9वें गुणस्थान में काल करने वाले की गति निर्ग्रन्थ के समान ही बतलायी गयी है।

सातवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक में काल करने पर सीधे चतुर्थ गुणस्थान में ही उत्पन्न होता है। अर्थात् छट्ठे गुणस्थान तक काल करने पर चौथे गुणस्थान में उत्पन्न होने की नियमा नहीं है। इसलिये सातवें से ग्यारहवें गुणस्थान तक में काल करने वाला नियम से आराधक ही होता है।

जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है कि मात्र मृत्यु के समय सम्यग्दृष्टि रह जाना आराधना का मूल आधार नहीं है। आयु बन्ध के समय सम्यग्दृष्टि होने पर नरकादि सात प्रकृतियों का बन्ध नहीं हो सकता। अस्तु, मनुष्य की अपेक्षा वैमानिक के 35 स्थानों को छोड़कर अन्यत्र उत्पन्न होने वाला (6 नरक, (सातवीं नरक को छोड़कर) 5 सन्नी तिर्यञ्च, 15 कर्मभूमि, 30 अकर्मभूमि, इन 56 के पर्याप्त व अपर्याप्त इस प्रकार 112 भेदों में उत्पन्न होने वाला) सम्यग् दृष्टि होने पर भी आराधक नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि ऐसा जीव देशोन अर्ध-पुद्गल परावर्तन काल तक भी संसार में परिभ्रमण कर सकता है। जबकि भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 10 में आराधक के लिये उत्कृष्टतः 15 भव में नियम से मुक्ति की बात कही गयी है। अतः मृत्यु के समय सम्यक्त्व होने मात्र से आराधना का सम्बन्ध नहीं बैठता है।

क्षायिक समकित वाला मनुष्य भी यदि युगलिक मनुष्य, तिर्यञ्च तथा भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी व नारकी में जा रहा है, तो उसने निश्चित् ही अगले भव का आयुष्य-बन्ध मिथ्यात्व में किया है। इसलिये पूर्व वर्णित सिद्धान्त के अनुसार उसे भी आराधक नहीं कहा जा सकता है।

पन्नवणा सूत्र के छठे पद में वर्णन है कि नवग्रैवेयक में दो प्रकार के मनुष्य जाते हैं। 1. सलिंगी सम्यग्दृष्टि - जो कि छट्ठे-सातवें गुणस्थानवर्ती होते हैं। 2. सलिंगी मिथ्यादृष्टि - जो कि प्रथम गुणस्थान वाले होते हैं। मिथ्यात्वी जो नवग्रैवेयक में जाता है वह बाह्य क्रिया को बराबर तीन करण तीन योग से पालन करने वाला होता है। वह व्यवहार दृष्टि से ज्ञान व चारित्र का आराधक दिखाई देते हुए भी निश्चय से उसमें सम्यक्त्व न होने से वह ज्ञान तथा चारित्र इन दोनों का आराधक नहीं हो सकता है। अर्थात् आयुष्य बन्ध के समय सम्यग् दर्शन हुए बिना जीव आराधक नहीं हो सकता। अभव्यी और मिथ्यात्वी जीव वास्तव में तो आराधक हो ही नहीं सकते।

जिन्होंने मिथ्यात्व अवस्था में वैमानिक को छोड़कर अन्य का आयुष्य बान्धा हो, वे मृत्युकाल में निश्चित् ही व्रतों के आराधक नहीं होते हैं। मिथ्यात्व अवस्था में आयुष्य बांधकर फिर वे सम्यक्त्व युक्त होकर तथा सम्यक्त्व में काल करके चारों में से किसी भी गति में जा सकते हैं, परन्तु वे देश या सर्व आराधक नहीं बन पाते हैं।

भगवती सूत्र शतक 1 उद्दे.3 सूत्र-6 में वर्णन है कि 'जो जिनेन्द्रों द्वारा प्ररूपित है, उसे सत्य और निःशंक मानता है। मन में धारण (निश्चय) करता हुआ, उसी तरह आचरण करता हुआ, उसी तरह कहता हुआ, उसी तरह संवर करता हुआ विचरण करता है, वह जीव जिनेन्द्र भगवन्तों की आज्ञा का आराधक होता है।

ऐसा आराधक भी उसे ही मानना चाहिये जिसके कि सम्यक्त्व अवस्था में अगले भव का आयुष्य बन्ध हुआ हो अथवा जो उसी भव में मुक्ति को प्राप्त करने वाला अर्थात् चरम शरीरी जीव हो।

आराधक के भव

उत्कृष्ट ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करने वाले कतिपय साधक उसी भव में तथा कतिपय दो भव (बीच में एक देव और एक मनुष्य का) ग्रहण करके मोक्ष में जाते हैं। कई जीव कल्पोपपन्न या कल्पातीत देवलोकों में, विशेषतः उत्कृष्ट चारित्राराधना वाले एक मात्र कल्पातीत देवलोकों में उत्पन्न होते हैं।

मध्यम ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना वाले कतिपय जीव जघन्य दो भव ग्रहण करके उत्कृष्टतः तीसरे भव में (बीच में दो भव देवों के करके) अवश्य मोक्ष में जाते हैं अर्थात् दो भव वैमानिक के तथा तीन भव मनुष्य के, इस प्रकार कुल 5 भव करके तो वह जीव मोक्ष में जाता ही है।

इसी तरह जघन्य ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करने वाले कतिपय जीव जघन्य तीसरे भव में, उत्कृष्ट सात या आठ भवों में (सात भव देव-सम्बन्धी तथा आठ भव चारित्र-सम्बन्धी मनुष्य के) अवश्यमेव मोक्ष में जाते हैं।

भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशक 6 में अकृत्यसेवी आराधक का वर्णन किया गया है। उसमें अन्तर्मन से आलोचना करने वाले को आराधक बतलाया गया है। ऐसा आराधक भी वही बन पाता है, जिसने सम्यक्त्व अवस्था में अगले भव का आयुष्य बन्ध किया हो, अन्यथा अन्तर्मन से तथारूप आलोचना संभव नहीं हो पाती है।

एक बार आराधक बना हुआ साधक 15 भवों तक लगातार आराधक ही बना रहे, यह आवश्यक नहीं है। वह बीच में विराधक भी हो सकता है। यह तथ्य निम्न प्रमाणों से स्पष्ट होता है-

1. सुख विपाक सूत्र में सुबाहु कुमार के वर्णन में उल्लेख है कि उन्होंने सर्वार्थ सिद्ध विमान से आने के बाद मनुष्य भव में केवल बोधि (सम्यग्दर्शन) को प्राप्त किया। अर्थात् मनुष्य भव में मिथ्यात्वी से सम्यक्त्वी बने।
2. पन्नवणा सूत्र के 15वें इन्द्रिय पद में वर्णन है कि चार अनुत्तर विमान से आया हुआ जीव 8-16-24 यावत् संख्याता द्रव्येन्द्रियाँ कर सकता है। 16 द्रव्येन्द्रियाँ तभी घटित होती है जबकि अनुत्तर विमान से आकर मनुष्य भव में पुनः मनुष्यायु का बन्ध करे। मनुष्य भव में मनुष्यायु का बन्ध मिथ्यात्व अवस्था में ही सम्भव है।
3. तीर्थंकर चरित्र में भगवान ऋषभदेव के 13 भवों के वर्णन में उल्लेख मिलता है कि वे छठे भव में मनुष्य थे तथा सातवें भव में युगलिक मनुष्य बने। मनुष्य से मरकर युगलिक मनुष्य बनना भी तभी सम्भव है जबकि मिथ्यात्व अवस्था में आयुष्य बन्ध हुआ हो।

एक बार आराधक होने के बाद बीच में विराधक होने पर भी 15 भवों से अधिक तो वह किसी भी हालत में नहीं करता है।

आराधना से सम्बन्धित तथ्य (फलित सिद्धान्त)

1. **आराधना**-अध्ययन (पढ़ाई) के समान उत्तीर्ण होने की तैयारी करना। **आराधक**-परीक्षा के समय उत्तीर्ण होकर उपाधि (डिग्री) प्राप्त करने के समान अर्थात् परिणाम के समान। आराधना की, किन्तु परीक्षा (आयुष्य बन्ध) के समय सजगता नहीं रहे तो अनुत्तीर्ण (विराधक) हो जाता है।

2. ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना के आठ भव (मनुष्य सम्बन्धी) ही होते हैं। विराधना के तो अनेक भव हो सकते हैं। एक बार ज्ञान, दर्शन (सम्मिलित) की आराधना हो जाने पर भी उत्कृष्ट 15 भवों में मोक्ष की प्राप्ति निश्चित् है। प्रथम व अन्तिम भव में आराधक अवश्य होता है। बीच के भवों में विराधक भी हो सकते हैं, लेकिन 15 भवों से अधिक वह नहीं कर सकता है।

3. जघन्य आराधना वाला भी चार अनुत्तर विमान में जा सकता है। (पन्नवणा पद 15, उद्देशक 2 - 13 भव तक)

4. ज्ञान व दर्शन की उत्कृष्ट आराधना- चौथे, पाँचवें एवं छठे गुणस्थान में भी हो सकती है। (बकुश, प्रतिसेवना, कषाय कुशील नियंठा में)

5. चारित्र की उत्कृष्ट आराधना तो कषाय कुशील एवं निर्ग्रन्थ नियंठा में ही होने की सम्भावना है। (स्नातक नियंठा या क्षीण कषायी निर्ग्रन्थ नियंठा में तो चारित्र की आराधना का फल क्षायिक चारित्र होता ही है।

6. जिन्हें क्षपक श्रेणि करनी है, ऐसे छठे गुणस्थानवर्ती साधकों में ज्ञानादि तीनों प्रकार की उत्कृष्ट आराधना हो सकती है।

7. पुलाकादि तीन नियंठा में चारित्र की जघन्य व मध्यम आराधना होती है। कषाय कुशील एवं निर्ग्रन्थ में तीनों आराधना होती है। स्नातक में आराधना नहीं कह कर आराधना का फल (केवलज्ञान-केवलदर्शन) कहना चाहिए।

8. क्षपक श्रेणी में (आठवें आदि गुणस्थानों में) उत्कृष्ट चारित्राराधना की ही संभावना है। उपशम श्रेणि में (8 से 11 गुणस्थान) काल करने पर उत्कृष्ट चारित्राराधना की ही संभावना है। काल करके कल्पातीत (5 अनुत्तर विमान) देवों में ही उत्पन्न होते हैं। उपशम श्रेणि से गिरने पर भी जब तक आराधक रहे, तब तक उत्कृष्ट चारित्राराधना की ही संभावना है।

अखिल भारतीय श्री जैन रत्न आध्यात्मिक शिक्षण बोर्ड, जोधपुर

कक्षा : आठवीं – जैन धर्म भूषण (परीक्षा 16 जुलाई, 2017)

समय : 3 घण्टे अंक : 100

प्र.1 निम्नलिखित प्रश्नों में से सही उत्तर का क्रमाक्षर कोष्ठक में लिखिए :- 10x1 = (10)

(a) प्राण,भूत, जीव और सत्व की हिंसा नहीं करना ही धर्म कहा गया है-

(क) दशवैकालिक सूत्र में (ख) आचारांग सूत्र में

(ग) जीवाजीवाभिगम सूत्र में (घ) ठाणांग सूत्र में ( )

(b) 'न तुअट्टाविज्जा' का अर्थ है -

(क) सोवे नहीं (ख) चले नहीं

(ग) सुलावे नहीं (घ) खड़ा करावे नहीं ( )

(c) 'निचोडे नहीं' इस अर्थ के लिए प्रयुक्त प्राकृत शब्द है -

(क) न पविलिज्जा (ख) न आयाविज्जा

(ग) न पयाविज्जा (घ) न आवीलिज्जा ( )

(d) उत्कृष्ट तीन गाउ अवगाहना होती है -

(क) बेइन्द्रिय की (ख) स्थलचर की

(ग) तेइन्द्रिय की (घ) चौरेन्द्रिय की ( )

(e) चार लेश्यायें पाती हैं -

(क) असन्नी मनुष्य में (ख) सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में

(ग) गर्भज मनुष्य में (घ) युगलिक मनुष्य में ( )

(f) चौथा आरा उतरते और पाँचवा आरा लगते गर्भज मनुष्य की स्थिति होती है-

(क) 1 करोड़ पूर्व (ख) एक सौ वर्ष झाझेरी

(ग) 20 वर्ष (घ) 16 वर्ष ( )

(g) 'घुन' की उपमा से उपमित किया गया है -

(क) लोभ (ख) माया

(ग) मान (घ) क्रोध ( )

(h) 'उवहाणवं' का अर्थ है -

(क) तपस्वी (ख) युक्तियुक्त

(ग) अनासक्त (घ) अनायुष ( )

(i) आयताकार पर्वतों में श्रेष्ठ हैं -

(क) रूचक (ख) निषध

(ग) सुमेरु (घ) सुदर्शन ( )

(j) आराधक संयमी (साधु) तथा संयमासंयमी (श्रावक) की गति जघन्य पहला देवलोक बतायी गई है-

(क) औपपातिक सूत्र में (ख)तृतीय कर्मग्रंथ में

(ग) विशेषावश्यक भाष्य में (घ) पन्नवणा सूत्र में ( )

प्र.2 निम्न प्रश्नों के उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में दीजिए :- **10x1 = (10)**

(a) 'भंतं' का अर्थ भ्रमण करना नहीं है। ( )

(b) बिना गर्भ के उत्पन्न होने वाले कीड़े आदि सम्मूर्च्छिम हैं। ( )

(c) दशवैकालिक के चतुर्थ अध्ययन का नाम धर्मप्रज्ञप्ति नहीं है। ( )

(d) जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में प्राण और योग ये दो अंतिम द्वार हैं। ( )

(e) असन्नी मनुष्य में चार उपयोग पाये जाते हैं। ( )

(f) करोड़पूर्व या इससे कम स्थिति वाले सन्नी पर्याप्त मनुष्य ही वैक्रिय शरीर कर सकते हैं। ( )

(g) 'माया मित्ताणि नासेइ' उत्तराध्ययन सूत्र के 29वें अध्ययन में बताया गया है। ( )

(h) क्षत्रियों में विश्वसेन नामक चक्रवर्ती प्रधान है। ( )

(i) 'सूत्रकृतांग सूत्र' उत्कालिक होने से वीरत्थुइ का स्वाध्याय भी 34 अस्वाध्याय टालकर दिन और रात्रि के अंतिम प्रहर में होता है। ( )

(j) मिथ्यात्व अवस्था में आयुष्य बंध होने पर ही मनुष्य से मरकर युगलिक मनुष्य बनता है। ( )

प्र.3 मुझे पहचानो :- **10x1 = (10)**

(a) चरम अवस्था में भी मुझको ग्रहण कर साधक शीघ्र ही स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं। .....

(b) मैं दूसरा अधर्म द्वार हूँ। .....

(c) मैं थैली से उत्पन्न होने वाला जीव हूँ। .....

(d) मेरे उदय से जीव को भोग की अभिलाषा होती है। .....

(e) मेरी उत्कृष्ट अवगाहना 12 योजन है। .....

(f) मेरी उत्कृष्ट स्थिति आधा पल्योपम और पचास हजार वर्ष है। .....

(g) मेरे सामने सभी सुख-दुःख प्रकट किये जा सकते हैं। .....

(h) मैं सभी धर्मों में श्रेष्ठ हूँ। .....

(i) मैं सुवर्ण कुमार देवताओं का आनंददायक क्रीड़ास्थान हूँ। .....

(j) मेरा फल सामायिकादि 5 चारित्र है। .....

प्र.4 निम्न प्रश्नों के उत्तर एक-दो पंक्तियों में दीजिए। **14x2 = (28)**

a) सव्वभूयप्पभूयस्स,समं भूयाइं पासओ।

पिहियासवस्स दंतस्स, पावं कम्मं न बंधइ।। गाथा का भावार्थ लिखिए।

.....

.....

(b) पाँचवें महाव्रत में परिग्रह रखना पाप है। कैसे ?

.....

.....

(c) निम्न शब्दों में अर्थ लिखिए।

सब्भिंतरं ..... परिसागओ .....

विन्नाया ..... इइ .....

(d) नारकी के एक दण्डक में कौन-कौनसी समुद्घात पायी जाती है ?

.....

.....

(e) पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में प्राप्त लेश्या लिखिए।

.....

.....

(f) युगलिक मनुष्य की अवगाहना लिखिए।

.....

.....

(g) माया उत्पत्ति के कोई दो कारण लिखिए।

.....

.....

(h) **लोभ को जीतने के कोई दो उपाय लिखिए।**

.....

.....

(i) **गाथा को पूर्ण कीजिए।**

अणुत्तरं धम्ममिणं .....

.....**णं विसिट्ठे।।**

(j) **गाथा को पूर्ण कीजिए।**

कोहं च माणं .....

.....**ण कारवेइ।।**

(k) **निम्न शब्दों के अर्थ लिखिए।**

अज्झत्थदोसा ..... **अपडिण्णं** .....

मुदागरे ..... **विज्जं** .....

(l) **निम्न गाथा का भावार्थ लिखिए।**

थणियं व सद्दाण अणुत्तरे उ, चंदो व ताराण महाणुभावे।

गंधेसु वा चंदणमाहु सेट्ठं, एवं मुणीण अपडिन्नमाहु।।

.....

.....

.....

(m) **उत्कृष्ट आराधना के नाम, अर्थ व फल लिखिए।**

.....

.....

(n) **भगवती सूत्र शतक 8 उद्देशकं 6 में अकृत्यसेवी आराधक के विषय में क्या वर्णन किया गया है ?**

.....

.....

प्र.5 निम्न प्रश्नों के उत्तर दो-तीन वाक्यों में लिखिए : - **14x3 = (42)**

(a) **पच्छावि ते पयाया, खिप्पं गच्छंति अमरभवणाइं।**

जेसिं पिओ तवो संजमो य, खंती य बंभचेरं य।। गाथा का भावार्थ लिखिए।

.....

.....

.....

.....

(b) **रिक्त स्थान की पूर्ति करके भावार्थ लिखिए-**

जो जीवे.....

.....**नाहीइ संजमं।।**

भावार्थ.....

.....

.....

(c) **चौथे व्रत में मुनि क्या प्रतिज्ञा करते हैं ? समझाइए।**

.....

.....

.....

.....

(d) **निम्न अर्थ वाले प्राकृत शब्द लिखिए।**

भागना .....

आत्मा के हितार्थ .....

लोहमय श्लाका से .....

बुझवावे नहीं .....

कटी हुई डाल पर .....

पुण्यपाप को .....

(e) **किस प्रकार के साधक की सुगति सुलभ होती है ?**

.....

.....

.....

.....

(f) **पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग द्वार 15 भेदों की अपेक्षा से लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(g) **सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में अवगाहना लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(h) **तीन विकलेन्द्रिय तथा 5 असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में गति-आगति द्वार समझाइए।**

.....

.....

.....

.....

(i) **एक दण्डक नारकी तथा 13 दण्डक देवता में लेश्या द्वार समझाइए।**

.....

.....

.....

.....

(j) **गर्भज मनुष्य की काल की अपेक्षा स्थिति द्वार लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(k) **लोभ को जीतने के कोई तीन उपाय लिखिए।**

.....

.....

.....

.....

(l) **गाथा को पूर्ण कर भावार्थ लिखिए।**

से भूइपण्णे .....

.....**तमं पगासे।।**

भावार्थ-.....

.....

.....

.....

(m) **गाथा को पूर्ण कर भावार्थ लिखिए।**

ठिईण सेट्ठा.....

.....**परमत्थि णाणी।।**

भावार्थ-.....

.....

.....

.....

(n) **आराधना का अर्थ लिखते हुए बतलाइए कि प्रमुख आराधना कौनसी है और क्यों ?**

.....

.....

.....

.....